कल्प-सूत्र-प्रवचन

- माता त्रिशला के 14 स्वप्न
- भ. महावीर के 27 भव
- चौबीस तीर्थंकरों का संक्षिप्त जीवन परिचय
- चातुर्मास काल में साधु समाचारी
- बृहदालोयणा का अर्थ सहित पाठ

लेखक: गुरु सुदर्शन शिष्य–जय मुनि

कल्प-सूत्र

प्रवचन

लेखकः गुरु सुदर्शन शिष्य – जय मुनि

प्रथम संस्करण : अगस्त 2018
सर्वाधिकार © प्रकाशक

प्रकाशक / प्राप्ति स्थान :
रविन्द्र जैन
जय जिनशासन प्रकाशन
212, वीर अपार्टमैन्टस्, सैक्टर 13,
रोहिणी, दिल्ली-110 085
Mob: +91-98102 87446
Email : jaijinshaasanprakaashan@gmail.com

मुद्रक :
सिस्टम्स् विज़न, नई दिल्ली
Mob: +91-98102 12565
Email: systemsvision96@gmail.com

KALPA SUTRA PRAVACHAN

Author: गुरु सुदर्शन शिष्य–जय मुनि

अर्थ सौजन्य :
श्रीमती बबीता जैन, w/o श्री सुदर्शन जैन (गोली वाले)
शालीमार बाग, दिल्ली।

स्मृति में: श्रीमती चमेली देवी w/o श्री जय प्रकाश जी की
29वीं पुण्यतिथि पर

विशेष– दादा श्री लालजी मल जी, दादी श्रीमती भागवंती जी,
भ्राता-तपस्वी श्री नरेन्द्र मुनि जी म.

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश की, फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से, अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनर्प्रयोग की किसी भी प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता।

विषयक्रम

आशीर्वचन v

दो शब्द vii

आदौ यत् किञ्चित् ix

प्रथम पर्यूषण दिवस का प्रवचन 1

द्वितीय पर्यूषण दिवस का प्रवचन 16

तीसरा पर्यूषण दिवस का प्रवचन 35

चतुर्थ पर्यूषण दिवस का प्रवचन 57

पंचम पर्यूषण दिवस का प्रवचन 79

छठे पर्यूषण दिवस का प्रवचन 100

सातवें पर्यूषण दिवस का प्रवचन 121

आठवें पर्यूषण दिवस का प्रवचन—महापर्व सम्वत्सरी 142

आशीर्वचन

(पूज्य गणाधीश श्री प्रकाश चन्द्र जी महाराज की ओर से)

आगम हमारे नेत्र हैं, इनके माध्यम से हम अपना आध्यात्मिक स्वरूप देखते हैं। इसलिए आगमों का अधिकाधिक अध्ययन आवश्यक है। जैन समाज में अंतकृद्दशांग एवं कल्पसूत्र का पर्यूषणों में वाचन होता है। गतवर्ष अंतकृद्दशांग के आठ प्रवचनों का संग्रह निकला। इस वर्ष कल्पसूत्र के प्रवचनों का संग्रह समाज के समक्ष आ रहा है, इससे मुझे विशेष संतुष्टि हो रही है। श्री जय मुनि जी मेरे चरणों में दीर्घकाल तक रहते रहे हैं। उनकी अध्ययन-अध्यापन की रुचि मुझे अच्छी लगती रही है। इसी रुचि का परिणाम है कि कुछ समाजोपयोगी साहित्य बाहर आया है। यदि अच्छी पुस्तकें आएंगी तो स्वाध्याय शील भाई बहनों को बौद्धिक सामग्री मिलती रहेगी। आवश्यकता है कि पुस्तकें केवल प्रकाशित हो कर ही न रह जाएं, इनको पढ़ने वाले व्यक्ति भी तैयार हों, अन्यथा पुस्तकें अनुपयोगी होकर दीमकों के हवाले हो जाएंगी, फिर हम श्रुत ज्ञान की आशातना के पात्र बनेंगे। मेरी आन्तरिक भावना है कि नए-2 स्वाध्यायी बन्धु तैयार हों।

मैं श्री जयमुनि जी को अपने शिष्य के तुल्य मानता हूँ। ये भी मुझे गुरुतुल्य श्रद्धा अर्पित करते हैं। मेरी अन्तरात्मा से ये आशीर्वचन निकल रहे हैं कि ये निरन्तर श्रुत की सेवा करते रहें और स्वाध्यायी बन्धु लाभ लेते रहें।

— प्रकाश मुनि

दो शब्द

(संघ संचालक, मनोहर व्याख्यानी श्री नरेश मुनि जी म. की ओर से)

पर्यूषण पर्व आराधना की परंपरा अति प्राचीन है। प्रत्येक धार्मिक परंपरा में कुछ विशिष्ट दिन तप आराधना के रखे ही जाते हैं, जिनमें विशेष साधना व आराधना हो सके। जैन परंपरा में पर्यूषण भी वही महत्व रखते हैं। श्वेतांबर परंपरा में 8 दिन एवं दिगंबर परंपरा में 10 दिन के पर्यूषण होते हैं।

श्वेतांबर परंपरा में आठवें दिन क्षमा एवं दिगंबर परंपरा में पहले दिन "क्षमा पर्व" मनाया जाता है– जो एक ही दिन संवत्सरी पर बैठता है।

इन 8 दिनों की आराधना के लिए आगमों का वाचन स्वाध्याय एवं प्रेरणा के लिए किया जाता है। जहाँ भोजन का त्याग करना तप है, वहाँ आगम स्वाध्याय करना भी तपस्या है। महापुरुषों का जीवन सुनना-सुनाना भी तपस्या है। श्वेतांबर स्थानकवासी परंपरा में 32 आगम मान्य हैं। कल्पसूत्र इन 32 आगमों से अतिरिक्त 45 आगमों में मान्य है। इसमें तीर्थंकरों का वर्णन है और पर्यूषणा कल्प है।

श्वेतांबर मंदिर-मार्गी समाज में कल्पसूत्र का वाचन 8 दिनों में किया जाता रहा। धीरे-2 मूर्ति-पूजा एवं आकर्षण बढ़ाने के लिए कल्पसूत्र के माध्यम से भजन, नाटकादि तैयार किए जाने लगे और स्वप्नादि के माध्यम से बोलियां लगने लगीं, चढ़ावा चढ़ने लगा, तो स्थानकवासी परंपरा ने अंतगड सूत्र को विशेष महत्व दिया। वैसे भी अन्तगड सूत्र में उत्कृष्ट साधकों का वर्णन है। 11 अंगों में ये 8वां अंगसूत्र है, जो भगवान महावीर की साक्षात् वाणी है। 'त्याग-तपस्या' के उत्कृष्ट साधक कर्म क्षय करके सिद्ध-बुद्ध एवं मुक्त हुए। अतः इस आगम की आवश्यक वाचना होती है एवं दोपहर के समय कल्पसूत्र का भी वाचन होता है जिसमें आडंबर रहित महापुरुषों का जीवन एवं साधु कल्प-मर्यादा का वर्णन सुनाया जाता है। कल्पसूत्र को भी आगम की

ही मान्यता है और प्राकृत भाषा में ही है। भाषा क्लिष्ट एवं आगम का स्वरूप बड़ा होने के कारण हर एक से मूल वाचना संभव नहीं हो पाती। अतः कहीं-2 कल्प सूत्र का हिंदी अनुवाद या भाषानुवाद सुनाया जाता है, तो कहीं स्वतंत्र रूप से तीर्थंकरों का जीवन सुनाया जाता है।

इसी हेतु हमारे श्रद्धेय बहुश्रुत श्री जय मुनि जी म. ने कल्प सूत्र का भाषानुवाद किया जो सभी के सामने प्रस्तुत है। कई वर्षों से लिखा हुआ या फोटो स्टेट करके वाचना होती रही। यह अब स्वाध्यायी बंधुओं के द्वारा लगभग 80 क्षेत्रों में जाने से इसकी माँग बढ़ी तो इसका संशोधित रूप पुस्तकाकार में प्रस्तुत किया गया। जो सभी को पसंद आ रहा है।

श्रद्धेय श्री जय मुनि जी म. गुरु सुदर्शन संघ के सर्वोच्च विद्वान्, मेरे अग्रज गुरूभ्राता एवं आदर्श मुनिराज हैं। जिनकी लेखनी एवं अगाध ज्ञान से सभी जैन समाज परिचित है। आगमों के उलझे रहस्य अपनी प्रतिभा के बल पर तुरंत सुलझा देते हैं। इनका दिया गया समाधान सभी को पसंद आता है। गुरुदेव संघ शास्ता श्री सुदर्शन लाल जी म. इनको 'गौतम' की उपमा से उपमित किया करते थे।

अतः इनकी लेखनी के चमत्कार से सभी चमत्कृत हैं। ये पूजनीय मुनिराज अपने ज्ञान से जैन समाज को समृद्ध करते रहें, इन्हीं मंगल कामनाओं के साथ...

गुरु सुदर्शन शिष्य– नरेश मुनि

आदौ यत् किञ्चित्

कवि कुल गुरु कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश की प्रस्तावना में लिखा है—

मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशु-लभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ॥

मैं इतना नादान और अनजान हूँ कि बिना योग्यता के भी काव्य रचना की ओर कदम बढ़ा रहा हूँ। सारा संसार मेरा उसी तरह उपहास करेगा जैसे किसी ऊंचे वृक्ष की ऊंची शाखा पर लटकते हुए फल को तोड़ने का प्रयास कोई बौना आदमी कर रहा हो। आगमों के गहन रहस्यों को उद्घाटित कर सामान्य जनोपयोगी बनाने का प्रयास भी कुछ ऐसा ही है। कल्पसूत्र को प्रवचन शैली में प्रस्तुत करने की प्रथम प्रेरणा परम सहयोगी, ओजस्वी वक्ता श्री अचल मुनि जी म. की ओर से मिली। सन् 2008 में वह कार्य सम्पन्न हुआ। उन प्रवचनों की fair copy प्रवचन भास्कर श्री अजित मुनि जी म. के कर-कमलों से हुई। उसी का प्रचलन स्वाध्यायी बन्धुओं में अब तक होता रहा।

पर्यूषण महापर्वों में स्थानकवासी परम्परा अधिक महत्त्व तो अंतकृत् दशांग सूत्र को देती रही है, पर जहां संभव हो, वहाँ कल्पसूत्र का वाचन करने की कोशिश भी चली है। कल्पसूत्र जैन इतिहास का प्राचीनतम संस्करण है। यद्यपि जैन धर्म का आदि-बिन्दु प्रभु ऋषभदेव भगवान रहे हैं पर दीर्घकाल से श्रमण भगवान महावीर स्वामी ही केन्द्रीय स्थान पर विराजमान हैं। उनके द्वारा प्रदत्त नियमावाली का ही पालन आज का साधु साध्वी वर्ग करता है। श्रावक-श्राविका वर्ग के व्रतानुष्ठान भी भ. महावीर द्वारा प्ररूपित हैं। उनके मुख से निःसृत वचन ही वर्तमान में आगम के रूप में प्रतिष्ठित और पठित हैं। शेष 23 तीर्थंकरों की तुलना में उन्हीं का जीवन चरित्र जनमानस में तथा लिखित पृष्ठों पर ज्यादा सुरक्षित है। नई विधि से इतिहास का लेखन करने वाले विद्वज्जन

भी जैन धर्म के प्रवर्तक के रूप में भ. महावीर को ही प्रस्तुत करते हैं। अधिक गहन गवेषी इतिहासकार प्रभु पार्श्वनाथ से जैनत्व का प्रादुर्भाव मान लेते हैं। तो एकाध मनीषी प्रभु अरिष्टनेमि को ऐतिहासिकता प्रदान कर देते हैं। इससे पीछे जाने का साहस किसी इतिहासकार ने नहीं किया। कल्पसूत्रकार प्रत्येक परत को उघाड़ते-2 प्रथम बिन्दु मूल स्थान प्रभु ऋषभ देव तक पहुंचे हैं। लेकिन केन्द्र में फिर भी प्रभु महावीर स्वामी ही रखे हैं। इस केन्द्र से दो धाराएं प्रवाहित हुई हैं— एक पूर्वकालगामी, दूसरी उत्तरकालगामी। पूर्वकालगामी धारा में 23 तीर्थंकरों का आख्यान है तो उत्तरकालगामी धारा में प्रभु महावीर के प्रथम पट्टधर सुधर्मा स्वामी से लेकर आर्य वज्रसेन तक का उल्लेख है। इन्हीं केन्द्रीय व्यक्तित्व प्रभु महावीर स्वामी का चरित्र कल्पसूत्र में प्रस्तुत किया गया है। इस चरित्र में घटनाओं की विविधता तो नहीं है, पर प्रत्येक घटना की प्रामाणिकता निःसंदिग्ध है। दिगम्बर परम्परा ने कल्पसूत्र के एक दो प्रसंगो को स्वीकार नहीं किया। 1. देवानन्दा की कुक्षि से त्रिशला की कुक्षि में महावीर का संहरण 2. महावीर की पत्नी यशोदा तथा पुत्री प्रियदर्शना, दोहित्री शेषवती का सम्बन्ध। तटस्थ इतिहासकारों ने प्रथम विषय पर दिगम्बरों का साथ दिया है तो दूसरे विषय पर श्वेताम्बरों का।

भगवान महावीर के पूर्ववर्ती 27 भवों का चित्रण कथा ग्रन्थों से लेकर ही सुनाया जाता है। कल्प सूत्र में उस विषय की सामग्री उपलब्ध नहीं होती। उसी तरह भगवान् के साधना काल के दौरान जितना परिषह प्रधान घटनाचक्र घूमा वह भी कल्प सूत्र में नहीं है। हाँ, भगवान के निर्वाण के समय जो सार्वजनिक घोषणा हुई थी, वह विश्व इतिहास या भारतीय इतिहास के विशेषज्ञों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री बनती है। भारतीय पर्वों में सर्वोच्च दीपावली का मूल स्रोत ढूंढना हो तो इतिहास लेखकों के लिए कल्पसूत्र ही एकमात्र सहारा है। जब भगवान् का निर्वाण हुआ, तब नौ मल्लवी, नौ लिच्छवी इन 18 गण राजाओं ने निर्णय लिया था कि "गओ भावुज्जोओ, दव्वुज्जोयं

करिस्सामो" ज्ञान रोशनी के विलुप्त होने के पश्चात् उसकी स्मृति को शाश्वत बनाने के लिए हम प्रतिवर्ष, आज के दिन द्रव्योद्योत दीपकों की रोशनी करेंगे। यह है दीपावली पर्व की शुरुआत जिस ओर तटस्थ इतिहास लेखकों को निष्पक्षता के साथ ध्यान देना व दिलाना चाहिए। इसी प्रसंग को लेकर जैन चिन्तकों को भी अपनी प्ररूपणा के संशोधन की आवश्यकता है। अक्सर जैन साधु-साध्वियां फरमाते हैं कि निर्वाण से पूर्व इन्द्र महाराज ने भगवान् से निवेदन किया कि प्रभो! आपके जन्म नक्षत्र पर भस्मराशि ग्रहण लगने वाला है, उसके दुष्परिणाम को टालने के लिए आप अपनी आयु बढ़ा लें। तब भगवान् ने कहा कि हे इन्द्र, ऐसा संभव नहीं है। कोई व्यक्ति आयु का एक पल न घटा सकता है, न बढ़ा सकता है। साधु-साध्वियां इस घटना को और आगे बढ़ाते हुए फरमाते हैं कि जब तीर्थंकर भगवान् भी आयु कर्म के सम्बन्ध में विवश हैं तो सामान्य व्यक्ति का तो सामर्थ्य ही कहाँ है। यह प्ररूपणा कल्पसूत्रानुसारी नहीं है। तथा आयुष्य कर्म की अपवर्तना का आगमिक तथा कार्मग्रन्थिक सिद्धान्त भी खण्डित होता है। अतः जैन लेखक वक्ताओं के लिए संशोधन का संकेत है।

कल्पसूत्र में 14 स्वप्नों का आलंकारिक चित्रण वर्तमान युग में रुचिवर्धक न होकर रुचिरोधक सा प्रतीत होता है। प्रस्तुत प्रवचनों में उस-2 चित्रण का सार भाग सुरक्षित रखा गया है। वैसे तो सारे कल्पसूत्र में यह नियम अपनाया गया है पर जो पाठ अधिक क्लिष्ट और लम्बे हैं उन्हें सरल संक्षिप्त अर्थ देकर समेटा है।

23 तीर्थंकरों में पार्श्वनाथ, अरिष्टनेमि, मल्लिनाथ, शान्तिनाथ, श्री ऋषभदेव जैसे कुछ प्रमुख नाम ही चर्चित और उल्लिखित होते हैं। वर्तमान अवसर्पिणीकाल में 24 तीर्थंकरों का जिन शासन पर उपकार रहा है। किन्तु पंचम काल में केवल भगवान महावीर द्वारा निर्देशित कल्पों की व्यवस्था लागू होती है। भ. पार्श्वनाथ के मुनियों लिए दस में से चार कल्प ही मान्य थे। पर आज के मुनियों को दसों कल्पों की पालना आवश्यक है।

तीर्थंकरों के वर्णन के पश्चात् कल्पसूत्र में स्थविरावली का विवरण दिया गया। स्थविरावली के दो रूप हैं– 1. संक्षिप्त 2. विस्तृत। प्रस्तुत संस्करण में संक्षिप्त स्थविरावली को स्वीकार किया है। वैसे स्थविरावली में अनेकानेक ऐतिहासिक तथ्य छुपे हुए हैं। आचार्य सुहस्ती के समय में तथा उनके बाद जैन शासन का विस्तार किस-2 दिशा में, किस-2 देश में हुआ, इस विषय की झलक अत्र वर्णित विभिन्न शाखाओं, तथा कुलों के नामों से मिल जाती है। स्थविरावली में वर्णित आचार्यों का जीवन चारित्र मूल में तो नहीं है पर सामान्य जन के लिए उपयोगी होने से अन्यान्य इतिहास ग्रन्थों से लेकर यहाँ पिरोया गया है। इस स्थविरावली में भगवान महावीर के निर्वाण के 600 वर्ष पश्चात् तक होने वाले आचार्यों तथा प्रभावशाली मुनियों का उल्लेख हुआ है। इस आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कल्पसूत्र का वर्तमान स्वरूप भगवान् के 600 साल बाद ही निर्मित हुआ है। तथा प्रत्येक तीर्थंकर के निर्वाण के बाद ग्रन्थ का काल 980 तथा 993 वीर संवत् लिखा है। इस पाठ का सीधा सा अर्थ तो यही है कि यह कल्प सूत्र देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के समय बना है। वैसे परम्परा से यह अर्थ भी निकाला गया है कि यह निर्मित तो पहले हुआ था पर इसको 'लिपिबद्ध' देवर्धि के युग में किया गया।

गौर से देखें तो 'लिपिबद्ध' करने वाली बात तो सभी आगमों पर लागू होती है। कल्प सूत्र में ही क्यों इसका वर्णन किया गया, अन्य किसी में क्यों नहीं? दूसरी बात यह वाक्य एक बार नहीं 24 बार लिखा गया है। लिपिकार को मूल रचानाकर से भिन्न लिखने का अधिकार इतना अधिक नहीं होता। अतः प्रतीत होता है कि इसका संपूर्ण रूप तो देवर्धि गणी के युग में ही बना होगा। हाँ, 'पर्यूषणा कल्प' वाला अंतिम भाग भद्रबाहु स्वामी के द्वारा लिखा गया होगा। फिर उसके इर्द गिर्द अन्य सामग्री जुड़ती चली गई होगी और अंतिम रूप देवर्धिगणी जी के समय निश्चित हो गया।

इस विषय में ये सावधानी रखनी चाहिए कि कल्प सूत्र के अंत में जो पाठ है कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने राजगृह नगर में चतुर्विध संघ के सामने पर्यूषण कल्प अध्ययन का कथन किया। इसका अभिप्राय ये नहीं है कि यह अध्ययन भगवान् के समय ही निर्मित हो गया था। यदि उस समय निर्मित होता तो इसे 'अंग बाह्य' आगमों में स्थान मिलता न कि अंग-प्रविष्ट आगमों में। भगवान ने तो इस अध्ययन का भाव फरमाया था जो शिष्य परम्परा से आगे चलता रहा और अंत में भद्रबाहु स्वामी ने उसे सूत्र रूप में गूंथ दिया। दशाश्रुत स्कन्ध की एक दशा के रूप में पहले पढ़ाया पढ़ा जाता रहा। फिर महावीर जीवन, 23 तीर्थंकर जीवन, स्थविरावली जुड़ने के पश्चात् दीर्घाकार बनने से स्वतन्त्र आगम के रूप में प्रचलित हो गया।

पर्यूषणों में अवश्य पठनीय पर्यूषणा समाचारी कल्पसूत्र का महत्वपूर्ण अंश है। चातुर्मास काल में साधु साध्वियों द्वारा आचरणीय यह समाचारी प्राचीन, अर्वाचीन दोनों कालों में उपयोगी है। उसका ज्ञान मुनि भी करें तो गृहस्थ भी करें। साधु और गृहस्थ एक दूसरे की साधना में सहयोगी बन सकें, इसी उद्देश्य से समाचारी का सारांश सप्तम प्रवचन में दिया गया है।

पर्यूषण के आठवें दिन सम्वत्सरी पर मध्याह्न में 'बृहदालोयणा' वाचने की परम्परा रही है। अतः उस परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए इस पुस्तक में उसे भी संकलित किया गया हैं।

संघशास्ता शासन प्रभावक पूज्य गुरुदेव श्री सुदर्शन लाल जी म. के समय में कल्प सूत्र का मूल और भावार्थ सुनाने का रिवाज था। प्राकृत पाठ की दुरुहता के कारण मूल पढने में जिन्हें असुविधा होती, वे मुनि भ. महावीर का जीवन चरित्र सुनाने लगे। ये ही परम्परा संघनायक शास्त्री श्री पद्म चन्द्र जी म. के काल में चलती रही। सन् 2007 से त्याग शिरोमणी राजर्षि श्री राजेन्द्र मुनि जी म. ने स्वाध्यायी बन्धुओं की व्यवस्था का निर्माण किया। वे मध्याह्न में मूल पाठ सुनाएं या महावीर जीवन सुनाएं, इस विषय का चिन्तन चला तो निर्णय आया कि

वे कल्प सूत्र सुनाएं पर मूल की बजाय अर्थरूप को सुनाएं। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज में कल्प सूत्र का वाचन अनिवार्य माना जाता है। वहां इसे 'बारसा सूत्र' भी कहा जाता है। उनके यहां भी मूल प्राकृत का वाचन नहीं किया जाता, केवल अर्थ वाचन ही चलता है। लेकिन अर्थ वाचन भी इतना लम्बा हो जाता है कि कभी-2, 3-4 घण्टे भी लग जाते हैं। इस परेशानी को टालने के लिए कल्प सूत्र के इन प्रवचनों का स्वरूप ऐसा रखा गया है कि कोई भी आवश्यक विषय छूटने न पाए, आगम के भावों से कहीं भी अन्याय न हो तथा पाठकों-श्रोताओं की रूचि भी बनी रहे।

वर्तमान संघ-संचालक श्री नरेश मुनि जी महाराज का संकेत मिला कि अंतकृत्दशांग के प्रवचनों की तरह कल्पसूत्र के प्रवचन भी संक्षिप्त वर्तुल से बाहर आएं, तो पूर्व लेखन का पुनरवलोकन किया गया। परम पूज्य, परम श्रद्धेय, तपस्विराज गणाधीश श्री प्रकाश चन्द्र जी म. के मंगल आशीर्वचनों की मोहर लगी तो यह पुस्तक प्रामाणिकता का दर्जा पा गई।

अपनी व्यक्तिगत दुर्बलताओं को स्वीकारते हुए, आगमिक भावों की अप्रस्तुति, अन्यथा प्रस्तुति के लिए क्षमायाचना-मिच्छामि दुक्कडं लेते हुए, किसी भी संशोधन के लिए विज्ञ जनों से विनति है।

गुरु सुदर्शन शिष्य – जय मुनि

हृदयस्थाय गुरु भगवते नमः

प्रथम प्रवचन

भजनः–

तर्जः– अफसाना लिख रही हूँ

इस कल्पसूत्र को सुनकर निज कल्याण करना है।
पर्यूषण पर्वों में अमृत का पान करना है ॥टेक॥

1. मर्यादा में साधु रहे श्रावक मर्यादा में,
   अपनी-2 मर्यादाओं का ज्ञान करना है ॥

2. इस आगम में प्रभु वीर का जीवन चरित्र है,
   हम महावीर बन जाएँ यों गुणगान करना है ॥

3. तेईस तीर्थेशों का वर्णन है संक्षेप में (यहाँ)
   निज संस्कृति इतिहास का अनुसंधान करना है ॥

4. गणधरों, आचार्यों और स्थविरों की वन्दना है,
   अपने पुरातन रक्त का सम्मान करना है ॥

5. जो कल्प हैं चौमास के उनका अध्ययन कर,
   कल्पानुसारी मुनियों पर श्रद्धान करना है ॥

6. सम्वत्सरी आएगी कर लें सबसे क्षमापना,
   क्षमा याचना के साथ क्षमादान करना है ॥

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमः प्रभुः
मंगलं स्थूल भद्राद्याः जैन धर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना करते हुए अपने पूज्य गुरुदेव को वन्दना करता हूँ। भाईयों और बहनों, हम सब पर्यूषण

महापर्व की आराधना में संलग्न हैं। साल भर तक हमने कुछ किया या नहीं किया उसकी ओर ध्यान न देते हुए केवल इन आठ दिनों की सफलता के लिए ही प्रयास करना है। इन 8 दिनों में अपने 8 कर्मों को कम करना है। समिति गुप्ति रूप अष्ट प्रवचन माता की गोद में निश्चिन्त होकर आराम करना है। ये 8 दिन अष्ट मंगल बनकर हमारे विघ्न और कष्टों का हरण करेंगे। आगमों में उल्लेख मिलता है कि तीर्थंकरों के कल्याणकों पर देवता धरती पर महोत्सव मनाकर जब वापिस देवलोकों में जाते थे, तब वे नन्दीश्वर द्वीप पर अष्टाह्निका महोत्सव अर्थात् 8 दिन की खुशी मनाते थे।

हमारे ये पर्यूषण पर्व भी उन्हीं 'अष्टाह्निका' के क्षणों को लेकर हमारे समक्ष उपस्थित हुए हैं। प्रत्येक जैन श्रावक का कर्तव्य है कि इनकी आराधना में प्राण पण से जुट जाएँ। पर्यूषणों में अधिकाधिक धर्म ध्यान करने के उद्देश्य से दो आगमों की वाचना करने की परम्परा रही है। प्रातः काल अन्तकृत् दशांग सूत्र पढा जाता है तथा दोपहर को कल्पसूत्र। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज में कल्पसूत्र की वाचना का तथा स्थानकवासी समाज में अन्तकृत् दशांग सूत्र की वाचना का अधिक महत्व है। परन्तु अब धीरे-2 स्थानकवासी परम्परा में भी कल्पसूत्र बांचने की प्रथा प्रारम्भ हो गई है।

कल्पसूत्र कोई स्वतन्त्र आगम नहीं है अपितु दशाश्रुत स्कन्ध नामक छेदसूत्र का आठवां अध्ययन है, जिसका नाम पर्यूषण कल्प है और जिसे आजकल कल्पसूत्र कहा जाता है। ऐसी धारणा है कि भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण के हजार वर्ष बाद आनन्दपुर के राजा ध्रुवसेन के इकलौते पुत्र का निधन हो गया। तब राजा को शोकमुक्त करने के लिए तत्कालिक साधुओं ने राजा के समक्ष कल्पसूत्र का वाचन किया था। जिस प्रकार हिन्दू परिवारों में भागवत का सप्ताह, सत्यनारायण की कथा करवाने का रिवाज है, उसी प्रकार जैन परिवारों में भी कल्पसूत्र का पाठ करवाने का रिवाज है। प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में सबसे ज्यादा प्रतियाँ कल्पसूत्र की ही मिलती हैं। सोने के अक्षरों से लिखी

हुई, सैकडों-चित्रों से सजी हुई प्रतियों को देखने से पता चलता है कि कल्पसूत्र के प्रति जन समाज में कितनी आस्था और श्रद्धा रही है।

कल्पसूत्र का मूल पाठ काफी कठिन और लम्बा होने के कारण हम आपके समाने इसका भावार्थ और सारांश ही प्रस्तुत करेंगे ताकि आपको इस आगम का सार समझ में आ सके। 'कल्प' का अर्थ है— मर्यादा, जैन साधु साध्वी का सारा जीवन मर्यादाओं से बंधा रहता है, वे अपनी चर्या कल्प के अनुसार ही चलाते हैं। कल्प दस प्रकार के होते हैं। पहले कल्प का नाम है— आचेलक्य अर्थात् वस्त्र न रखना, अल्प वस्त्र रखना तथा सादगी पूर्ण वस्त्र रखना। प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के शासन में रहने वाले मुनि श्वेत रंग के बहुत सीमित वस्त्र अपने पास रखते हैं जबकि बीच के 22 तीर्थंकरों के साधु रंगीन तथा बहुमूल्य वस्त्र भी रख सकते हैं। ये पहले कल्प की व्यवस्था है।

दूसरे कल्प का नाम है— औद्देशिक, जिसके अन्तर्गत कोई भी साधु साध्वी अपने लिए बना हुआ आहार ग्रहण नहीं कर सकता। तीसरे कल्प का नाम है— शय्यातर पिण्ड— जिस गृहस्थ के घर पर साधु साध्वी ठहरते हैं उसके घर से आहार पानी नहीं ले सकते। चौथे कल्प का नाम है— राज पिण्ड यानि साधु साध्वी को राजा के लिए बना भोजन नहीं लेना। अथवा राजकोष से निर्मित वस्तु को नहीं लेना भी इसके अन्तर्गत आ सकता है। बीच के 22 तीर्थंकरों के साधु साध्वी को छूट है। पांचवां कल्प है कृतिकर्म यानि छोटे मुनि बड़े मुनियों को वन्दना करें तथा उनकी आज्ञा का पालन करें। छठा कल्प है व्रत कल्प— चार या पांच महावतों की सीमा में रहकर अपनी साधना को चलाना इस कल्प का उद्देश्य है। व्रतों के अभाव में जीवन बाढ की तरह दिशाहीन होकर भटकता रहता है। सातवें कल्प ज्येष्ठ कल्प का आशय है कि 22 तीर्थंकरों के युग में सामायिक चारित्र लेते ही बड़े छोटे की व्यवस्था हो जाती है जबकि प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के शासन में छेदोपस्थापनीय चारित्र अर्थात् बड़ी दीक्षा के बाद ही छोटे बड़े का निर्धारण किया जाता है। राजा, मन्त्री, पिता, पुत्र आदि व्यावहारिक

सम्बन्धों की सुरक्षा के लिए किसी एक की बड़ी दीक्षा कुछ दिनों के लिए स्थगित Post Pone भी की जा सकती है, टाली भी जा सकती है जबकि मध्यम युग में ऐसा नहीं होता। बड़ी दीक्षा वाली साध्वी द्वारा छोटी दीक्षा वाले साधु को बड़ा मानकर वन्दन करना इसी कल्प में आता है। आठवें प्रतिक्रमण कल्प में आदेश है कि प्रत्येक साधक को प्रतिदिन सुबह शाम दो बार अपने व्रतों की आलोचना करके शुद्धि करना आवश्यक है तथा पक्खी, चौमासी और सम्वत्सरी पर विशेष रूप से प्रतिक्रमण करना अनिवार्य होता है। 9वें कल्प का नाम है– मास कल्प यानि साधु जी चातुर्मास के अलावा एक स्थान पर एक महीना तथा साध्वी जी दो महीने से ज्यादा नहीं ठहर सकते। दसवां कल्प है पर्यूषण कल्प अर्थात् चातुर्मास के पचासवें दिन अर्थात् सम्वत्सरी वाले दिन अपनी विशेष आराधना साधना करना पर्यूषण कल्प है और इसी कल्प के कारण इस आगम का नाम कल्पसूत्र है।

यद्यपि मूल आगम में इन 10 कल्पों का वर्णन नहीं है पर कल्पसूत्र की व्याख्या से पूर्व इनका विवेचन करना आवश्यक माना गया है। इसलिए आपके सामने ये विषय प्रस्तुत किया है।

मूल पाठ में सर्वप्रथम नवकार मन्त्र है। आओ आगमकारों के साथ हम भी महामन्त्र नवकार का उच्चारण करके अपने तन मन वचन को पावन करें–

नमो अरिहंताणं नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्व साहूणं।
एसो पञ्च नमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

अरिहन्तों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो,
आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो
तथा लोक के सब साधुओं को नमस्कार हो।
ये पांच प्रकार का नमस्कार सब पापों को नष्ट करता है
तथा सभी मंगलों में प्रथम मंगल है।

भगवती आदि कई आगमों की तरह कल्पसूत्र की शुरुआत भी महामन्त्र नवकार से की गई है। क्योंकि इससे बढकर उच्च कोटि की चीज हमारे पास नहीं है। प्रातः उठते ही, सायं सोने से पूर्व तथा दिन में हर समय हमारे रोम-2 से इस मन्त्र की ध्वनि निकलनी चाहिए। इसी उद्देश्य से कल्पसूत्र के प्रारम्भ में पांच परमेष्ठी को नमस्कार किया गया है ताकि आगम का पारायण निर्विघ्न हो जाए तथा जीवन के भय बाधा और संक्लेश दूर से टलते जाएँ।

इस कल्पसूत्र में श्रमण भगवान् महावीर का जीवन चरित्र काफी विस्तार से दिया गया है। भगवान् महावीर के साथ मुख्य रूप से 6 घटनाएँ जुड़ी है जबकि अन्य तीर्थंकरों के साथ पांच जुड़ी होती हैं– च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवल ज्ञान और निर्वाण, इन 5 कल्याणकों के अलावा भगवान् महावीर का गर्भ संहरण नामक एक विशेष प्रसंग और है। अन्य तीर्थंकरों के 5 कल्याणकों के नक्षत्र एक ही माने हैं जबकि भगवान् महावीर के अन्तिम कल्याणक का नक्षत्र भिन्न है। हस्तोत्तरा अर्थात् उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में भगवान् महावीर माँ की कुक्षि में आए, इसी नक्षत्र के समय उनका गर्भ परिवर्तन हुआ, जन्म हुआ, दीक्षा और केवल ज्ञान हुआ। परन्तु निर्वाण के समय उनका नक्षत्र स्वाति था।

इस अवसर्पिणी काल का पहला, दूसरा तथा तीसरा आरा बीत चुका था, चौथे आरे के 75 वर्ष साढ़े आठ महीने शेष थे, 23 तीर्थंकर अपनी ज्ञान प्रभा से भरत क्षेत्र को आलोकित कर मुक्ति में प्रस्थित हो चुके थे, युग एक शून्यता के कगार पर खड़ा था, मानव जाति धर्म की बुनियादी बातों को भूलकर सतही बातों में उलझी हुई थी। ब्राह्मण वर्ग ने जातिवाद के नाम पर मनुष्य जाति को कई टुकड़ों में बाँट दिया था। बड़ा गहरा अंधकार था। सामान्य मानव दिशाहीन सा किसी युगावतार की प्रतीक्षा में था। उस अंधतमस से घिरी अंधरात्रि में प्रकाश पुञ्ज की भांति वैशाली जनपद के ब्राह्मणकुंड ग्राम में ऋषभदत्त ब्राह्मण की धर्मपत्नी देवानन्दा की कुक्षि में भगवान् महावीर स्वामी का आगमन हुआ। ऋषभदत्त का गोत्र 'कोडाल' तथा देवानन्दा का 'जालन्धर' गोत्र

था। भगवान् महावीर को उस समय मति, श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान थे, क्योंकि तीर्थंकर के रूप में जन्म लेने वाले सभी महापुरुष प्रारम्भ से ही तीन ज्ञान के धारक होते हैं।

प्रश्न है कि महावीर प्रभु को ये तीन ज्ञान क्या अनादि काल से थे? उत्तर है– नहीं, फिर अगला प्रश्न है कि भगवान् महावीर इस मुकाम तक कैसे पहुंचे? उत्तर है– **'अनेक जन्म संसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।'** अनेक जन्मों की दीर्घ साधना के बाद ही कोई आत्मा परमात्मा पद तक पहुंचती है। अंग्रेजी में कहावत है कि Rome was not built in a day रोम का निर्माण एक दिन में नहीं हो गया। उसी तरह Mahavir was not made in a single life. महावीर स्वामी भी पहले सामान्य जीव की तरह अनादि अनन्त संसार के चक्र में घूमते रहे थे। जब से उन्हें आत्मा की प्रथम अनुभूति हुई तभी से उनकी धर्म यात्रा की बुनियाद रखी गई। अब हम आपे सामने भगवान् महावीर के मुख्य-2 सताईस भवों में से 5-6 भवों का जिक्र करेंगे। पहले भजन की कुछ लाईनों का आनन्द लेंगे–

तर्जः– मेरा छोटा-सा संसार

गाना है वीर गुणगान पाना है धर्म वरदान,
था जीवन चरित्र महान् सुनने से हो कल्याण ॥
'गुणगान करें कल्याण करें, शुभ ध्यान धरें, वरदान वरें' ॥टेक॥

नयसार ने रस्ता दिखलाया, फिर मुनियों से रस्ता पाया,
रजनी में उगा दिनमान सुनने से हो कल्याण ॥

पश्चिम महाविदेह के महावप्र विजय की जयन्ती नगरी में शत्रुमर्दन सम्राट् थे। उनके अधीन काम करने वाले एक व्यक्ति का नाम नयसार था। वह पृथ्वीप्रतिष्ठान गांव का निवासी था। एक बार वह सम्राट् के महल के लिए लकड़ी लेने वनों में गया। काफी कर्मचारी उसके साथ थे। सबके भोजन पानी का प्रबन्ध वहीं जंगल में था। रास्ता भटकते

हुए एक तपस्वी मुनि उधर ही आ गए। नयसार ने पहले उन्हें निर्दोष आहार पानी दिया फिर रास्ता बताने के लिए दूर तक साथ आया। रास्ता दिखाकर वापिस मुड़ने लगा तो मुनि बोले—भद्र! तूने हमें रास्ता बताया है। हम भी तुझे रास्ता बता देते हैं। वो एकदम चौंका कि ये मुझे क्या रास्ता बताएंगे, मैं तो जंगल के चप्पे-3 से परिचित हूँ। पर मुनियों ने तुरन्त समझाया—तुमने हमें दुनिया का रस्ता बताया है, हम तुझे मोक्ष का रस्ता बताएँगे। उसकी उत्सुकता जागी और उस जीव ने अनन्त पुदगल-परावर्तनों के बाद प्रथम बार सम्यक्त्व अर्थात् मोक्ष का मार्ग समझा और ग्रहण किया। यह है महावीर प्रभु के जीवन की महान् यात्रा का प्रथम चरण।

वहाँ से काल करके नयसार देवलोक में गए फिर मरीचि के रूप में पैदा हुए। मरीचि भगवान् ऋषभदेव का पौत्र तथा भरत चक्रवर्ती का पुत्र था। युवावस्था में मुनि बनकर प्रभु के चरणों में रहने लगा। लेकिन जैन मुनि के कठोर नियमों को निभाने में परेशानी मानने लगा। घर वापिस भी नही जाना चाहता था और मुनि जीवन निभाना भी मुश्किल हो रहा था। अतः त्रिदण्डी संन्यासी के रूप में रहने लगा, कुछ सुविधाएँ ले ली और जैन मुनि के वेष को भी कलंकित नहीं किया। भले ही वह चारित्र की दृष्टि से शिथिल हो गया था पर तीर्थंकर भगवन्तों के धर्म के प्रति पूर्णतः आस्थावान् था। स्वयं समोसरण के बाहर बैठकर लोगों को धर्मोपदेश देता और कहता कि शुद्ध संयम परम्परा आपको भगवान् के समोसरण में देखने को मिलेगी, मैं तो दुर्बल हूँ। अपनी शुद्ध श्रद्धा के कारण वह अपनी कर्म निर्जरा में आगे बढ़ रहा था। तथा अपने भविष्य को उज्ज्वल बना रहा था। एक दिन भरत चक्रवर्ती ने भगवान् ऋषभदेव से पूछा— भगवान्! जैसी तीर्थंकरत्व की महिमा आपकी फैल रही है, क्या आपके समोसरण में मौजूद किसी और जीव की भी फैलेगी? भगवान् ने फरमाया—समोसरण में तो नहीं पर समोसरण के बाहर बैठे मरीचि को ये सौभाग्य प्राप्त होगा।

वह पोतनपुर में त्रिपृष्ट वासुदेव का पद भोगेगा। महाविदेह की मूकानगरी में प्रियमित्र चक्रवर्ती बनेगा और इस अवसर्पिणी काल में अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान महावीर बनेगा। भगवान् की वाणी सुनकर भरत महाराज बाहर आए। त्रिदण्डी मरीचि से कहा– तुम वासुदेव, चक्रवर्ती और अन्त में तीर्थंकर भी बनोगे। मैं तुम्हारे तीर्थंकर भव को वन्दना करता हूँ। सुनते ही मरीचि अहंकार से भर गया। उछलता हुआ बोलने लगा कि मैं और मेरा कुल कितना महान् है कि संसार के सारे ऊंचे पद हमें ही मिले हैं और मिलेगें। इस अभिमान में उसने नीच गोत्र का बन्ध कर लिया।

मरीचि की पूर्ववर्ती शुद्ध श्रद्धा भी अन्तिम दिनों में ढीली पड़ गई, उसे किसी सहयोगी की आवश्यकता थी। कपिल नामक एक राजकुमार किसी आसान सी साधना की तलाश में था और उसका मरीचि से सम्पर्क हो गया। उसे मरीचि ने शिष्य लोभ में कहा कि– मेरे पास जो धर्म है वह शुद्ध जिन धर्म है। तुम दीक्षा लो और तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। इस मिथ्या प्ररूपणा से मरीचि ने अपना संसार दीर्घ कर लिया।

इसके बाद 12 और सामान्य से भवों का वर्णन ग्रन्थों में आता है। सोलहवें भव में वह राजगृह के राजा विश्वनंदी का भतीजा और विशाखभूति का पुत्र विश्वभूति बना। जहाँ वह पारिवारिक षड्यन्त्रों का शिकार बना और क्षोभ में आकर साधु बन गया। मन का क्रोध फिर भी शान्त नहीं हुआ और अन्त में निदान करके काल किया।

भजनः– मेरा छोटा-सा संसार

1. करना है वीर गुणगान पाना है धर्म वरदान,
   था जीवन चरित्र महान् सुनने से हो कल्याण ॥

2. मरीचि ने संयम छोड़ दिया, श्रद्धा से नाता जोड़ लिया,
   कहा बनेगा यह भगवान्, सुनने से हो कल्याण ॥

3. बने विश्व भूति तप की प्रतिमा, प्रतिशोध हृदय का नहीं थमा,
   किया अन्तिम समय निदान, सुनने से हो कल्याण ॥

विविध मोड़ों से गुजरती हुई वह अन्तर्यात्रा आज शिखरों से उतरकर खंदको में जा धंसी जहाँ रोशनी की किरणें नहीं, अंधकार के कृमिकीट कुलबुला रहे थे। क्षमा, अहिंसा, धर्मश्रद्धा के बजाय प्रतिशोध, क्रोध असहिष्णुता के अंगारे दहक रहे थे। उन्हीं मनोभावों को सघनता मिली 18वें भव में त्रिपृष्ट के रूप में।

अपने दुर्बल पिता का वह सबल-प्रबल युवा पुत्र अपने समक्ष किसी को कुछ नहीं समझता था। अपने युग के जाने माने हर वर्चस्वी-यशस्वी सत्ताधीश को उसने मिट्टी सुंघा दी थी, उसकी हर आज्ञा उस समय पाली जाती थी पर त्रिपृष्ट ने जानबूझकर उसकी हर आज्ञा को भंग किया। अपने भाई को साथ लेकर वह हर युगीन ताकत से टकराया। एक केसरी सिंह को अपने हाथों से चीर दिया तथा अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव का वध करके आधे भरत क्षेत्र पर अपनी विजय पताका फहरा दी। उपलब्धियाँ उसके चक्कर काटने लगी, सत्ता और शक्ति उसकी दासी बनकर रहने लगी। और इस कारण उसका मद आसमान को चूमने लगा। Power corrupts and absolute power corrupts absolutely. निरंकुश सत्ता ने उसे मदान्ध बना दिया। वह भूल गया कि स्नेह, प्रेम करुणा और दया भी इस जीवन और जगत के मौलिक गुण हैं। वह भूल गया कि संसार ने जहाँ सत्ताधीशों को मुकुट चढाए हैं तो वक्त ने उन्हें धूल भी चटाई है। मनुष्य को अपनी हैसियत का अहसास जरूर रहना चाहिए।

मगरूर न हो इतना कुछ अपनी बुलन्दी पर।
हमने तो सितारों को भी गिरते हुए देखा है ॥

एक दिन तो त्रिपृष्ट ने क्रूरता की हद कर दी, उसकी संगीत शाला में संगीत का कार्यक्रम चल रहा था, वह उसका आनन्द ले रहा था। उसने शय्यापालक से कहा कि मुझे नींद आने लगे तो कार्यक्रम बन्द करवा देना। शय्या पालक ने हाँ भर दी पर वक्त पर चूक गया। त्रिपृष्ट की आँख लग गई पर संगीत चलता रहा, जब संगीत-लहरियों

के उत्कर्ष पर लोगों ने तालियाँ बजाई तो त्रिपृष्ट की आँख खुल गई और वह संगीत को चलता देखकर आग बबूला हो गया। शय्यापालक की ओर क्रूर निगाहों से देखने लगा। बेचारे को काटो तो खून नहीं। निष्ठुरता, क्रूरता का बीभत्स रूप प्रकट करते हुए त्रिपृष्ट ने आदेश दिया– इस कानों के रसिक शय्यापालक के कानों में गर्म शीशा डाल दो। त्रिपृष्ट ने उस दिन न केवल एक मानव को मरवाया बल्कि सम्पूर्ण मानवता का कत्ल कर दिया।

गरीब को मत सता गरीब रो देगा,
जो सुन लिया उस मालिक ने (कर्म सिद्धान्त ने),
तो जड़ मूल से खो देगा ॥

मत सता जालिम किसी को, मत किसी की आह ले।
दिल के दुखने से तो नादां, अर्स भी हिल जाएगा ॥

त्रिपृष्ट ने निकाचित कर्मों का बन्ध किया। **'कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि'** किए हुए कर्मों का भुगतान किए बिना छुटकारा नहीं, ये सिद्धान्त ऐसी घटनाओं पर लागू होता है। अन्त में त्रिपृष्ट वासुदेव काल करके सातवीं नरक में गया।

याद रखें– नयसार, मरीचि, विश्वभूति, त्रिपृष्ट के नाम से जिस आत्मा को सातवीं नरक मिली है वही आत्मा आगे कभी भगवान् महावीर भी कहलाएगी। जैन धर्म ही विश्व में एक मात्र ऐसा धर्म है जिसने व्यक्ति से अधिक सिद्धान्त को अधिमान दिया है। यदि महावीर के जीव ने पाप किया है तो वह भी नरक में जाएगा, उसे कोई रोक नहीं सकता। अन्य किसी धर्म प्रणेता के बारे में कोई कह दे कि वह फलां-2 जन्म में नरक में गया तो उस धर्म के समर्थक बावेला खड़ा कर दें क्योंकि वे अपने धर्मगुरु के बारे में न तो प्रतिकूल सुन सकते हैं, न कह सकते हैं और न ही सोच सकते हैं जबकि जैनों ने स्वयं ये तथ्य उद्घाटित करके समाज के सामने प्रस्तुत किया है कि महान् हिंसा के कारण महावीर का जीव भी एक बार सातवीं नरक में गया था। सातवीं नरक से निकलकर वह जीव शेर बना फिर चौथी नरक में गया।

फिर कई गतियों में भ्रमण करके 22वें भव में महाविदेह क्षेत्र की मूका नगरी में प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती बना। चक्रवर्ती बनकर भी भोगासक्ति, हिंसा तथा पौद्गलिक आकर्षणों से स्वयं को बचाया और पोट्टिलाचार्य के पास दीक्षा लेकर कठोर संयम की पालना की। सातवें देवलोक में सुख भोगे और छत्रा नगरी के राजा जितशत्रु की महारानी भद्रा की कुक्षि से जन्म लिया, नाम रखा गया– नन्दन। उनका ये 24वां भव आत्मोत्कर्ष का आदर्श था। उन्होने हर उपलब्धि को बढ़ाया और हर त्रुटि का सफाया किया। सम्यक्त्व की धारा जो सूख गई थी उसके स्रोतों को जमीन की सतह से फिर बाहर प्रकट किया। जो ज्ञान प्राप्त होकर विस्मृत हो गया था उसे स्मृतिकोष में जागृत किया। जो चरित्र छिटक-2 कर छूट गया था उसे फिर बहाल किया। जो तप उन्हें कम भाता था उसे अपना ध्येय बना लिया। एक लाख वर्ष तक मासखमण तप करते रहे, ग्यारह लाख 60 हजार मासखमण किए, तीर्थंकर प्रकृति के 20 बोलों की विशुद्ध आराधना की तथा तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया।

भजनः–

तर्जः– मेरा छोटा-सा संसार

गाना है वीर गुणगान, पाना है धर्म वरदान,
था जीवन चरित महान्, सुनने से हो कल्याण-॥

त्रिपृष्ठ नीति का संस्थापक, फिर बना स्वयं ही विध्वसंक,
शीशे से भराए कान ॥

नन्दन राजा ने दीक्षा ले, थे मासखमण सुविशाल किए,
किया प्राणत में प्रस्थान ॥

नन्दन मुनि ने अन्त में एक महीने का संथारा किया और 10वें देवलोक प्राणत में 20 सागर की आयु पाई। देवलोक में भी उनके पास मति, श्रुत तथा अवधि ये तीन ज्ञान थे, और जब वह आत्मा

ब्राह्मण कुंड ग्राम में देवानन्दा की कुक्षि में अवतीर्ण हुई उस समय भी उसके पास 3 ज्ञान थे। देवलोक में रहते हुए उन्हें ध्यान था कि मेरा यहाँ से च्यवन होने वाला है तथा मनुष्य गति में जन्म होने वाला है। मनुष्य गति में आने के बाद उन्हें ज्ञान था कि मैं देवलोक से चला था और मनुष्य लोक में आया हूँ, परन्तु च्यवन का अन्तिम और जन्म का जो प्रथम समय था उस समय उनको ज्ञान नहीं था कि क्या हो रहा है, क्योंकि इतने सूक्ष्म काल और उस काल की घटना को केवली या परमावधि ज्ञानी के अलावा और कोई जान या देख नहीं सकता।

ग्रीष्म ऋतु आषाढ महीना शुक्ल पक्ष की छठ की उस पावन रात्रि में इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम तीर्थंकर को माता देवानन्दा की कुक्षि प्राप्त हुई। पुत्र को माँ मिली, माँ को पुत्र मिला, सृष्टि को अवलम्ब मिला, धरती को धैर्य, आसमान को आश्रय, धर्म को नेतृत्व, तीर्थ को वक्तृत्व, तथा कल्पनाओं को व्यक्तित्व मिला। जब देवानन्दा हल्की-2 मीठी-2 नींद में थी तब उसे चौदह महास्वप्नों के दर्शन हुए। स्वप्नों के नाम— 1. हाथी 2 बैल 3. सिंह 4. लक्ष्मी का अभिषेक 5. पुष्पमाला 6. चन्द्र 7. सूर्य 8. ध्वजा 9. कुंभ 10. पद्म सरोवर 11. सागर 12. देव विमान 13. रत्नराशि 14. निर्धूम अग्नि। इन 14 स्वप्नों को देखकर देवानन्दा का रोम-2 पुलकित हो गया। खुशी से लबरेज वह अपने पतिदेव ऋषभदत्त ब्राह्मण के पास जाकर सभी स्वप्नों का हृदयहारी वर्णन करती है। ऋषभदत्त भी हर्ष से झूमने लगा, बोला— हे देवानुप्रिये! तुम्हारे स्वप्न बड़े मंगलकारी और कल्याणकारी हैं। तुम्हें पुत्र लाभ के साथ अर्थ, भोग और सुख का लाभ होगा। तुम्हारी कुक्षि से जिस उत्तम बालक का जन्म होगा वह 4 वेद, इतिहास, निघण्टु आदि का ज्ञाता बनेगा। ब्राह्मण कुलोचित विद्याओं में पारगामी होगा। हमारे कुल, जाति और धर्म के लिए आशा की किरण बनेगा, इसलिए तेरे स्वप्न आरोग्य तुष्टि, दीर्घायु तथा मंगल कल्याण के सूचक हैं। पतिदेव के इस उत्तर से ब्राह्मणी का मन गद्गद हो उठा, उसकी बातों को स्वीकार करती हुई आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगी।

आज प्रथम पर्यूषण का विषय हम इतना ही रखेगें। अब तक हमने भगवान् महावीर के 26 भवों का संक्षिप्त सा परिचय प्राप्त किया है। इस सुदृढ भूमिका के ऊपर भगवान् महावीर के जीवन का भव्य महल खड़ा होना है। पूज्य गुरुदेव जी म. का अमर उद्घोष था कि नींव अगर पक्की है तो महल भी सुरक्षित रहता है। एक बार बादशाह शाहजहाँ ने सोचा कि ऐसा किला बनवाऊं जो हजारों साल तक मेरा नाम रोशन करता रहे। उसने उस जमाने के दो प्रसिद्ध और अनुभवी मिस्त्री हीरा और हाशिद को सारी योजना समझा दी। दोनों ने अपनी निगरानी में किले की नींव खुदवाई और चिनवा दी। जैसे ही नींव तैयार हुई, दोनों मिस्त्री दिल्ली से ही नहीं, हिन्दुस्तान से भी गायब हो गए। उनके बिना सारा काम ठप्प हो गया। बादशाह को बड़ा गुस्सा आया। उनकी तलाश करवाई पर नहीं मिले। वे काबुल में जाकर छुप गए थे। साल भर तक बादशाह इन्तजार करता रहा। एक दिन बादशाह दरबार में बैठा था, दो बुर्कापोश आदमी आए, हाथ जोड़कर खड़े हो गए, उनके शरीर कांप रहे थे, बादशाह ने पूछा—कौन हो? कांप क्यों रहे हो? दोनों ने सिर झुकाते हुए कहा— पहले खता माफ हो तो बताएँ, बादशाह ने कहा— माफ है, अब बोलो। उन्होंने बुर्का उतारा, बादशाह ने देखा, वही दोनों मिस्त्री थे, जिनकी इन्तजार में साल भर से परेशान हो रहा था तथा जिन्हें सख्त से सख्त सजा देने की घोषणा कर चुका था। बादशाह ने पूछा— साल भर कहाँ क्या करते रहे? बोले— हजूर, हम जान बूझकर गायब हो गए थे, हमें पता था कि आपको किला बनवाने की जल्दी है, पर हम इतनी जल्दी काम करना नहीं चाहते थे, नींव भरने के बाद एक साल तक इन्तजार करना जरूरी था क्योंकि इस दौरान सर्दी, गर्मी, बरसात सभी ऋतुएँ आ गई, नीवों को जितना ढलना था ढल गई, सिकुड़ना था सिकुड़ गई, फूलना था फूल गई। यदि हम तुरन्त इस पर दीवारें चिनवा देते तो नीवों की कुदरती हलचल के साथ-2 दीवारों में भी हलचल आती और किले की पुख्तगी नहीं बनती लेकिन अब जो दीवार खड़ी होगी वह सैंकड़ों हजारों साल तक कायम

रहेगी। मौसम की तब्दीली इन्हें प्रभावित नहीं कर कर सकेगी। और फिर 'लाल किले' का निर्माण हुआ। इसी तरह भगवान् महावीर के जीव ने चारों गतियों में हर प्रकार के अनुभव बटोर लिए। सुख दुख, उत्थान पतन, हर दौर से वह आत्मा गुजर ली। अब तो तीर्थंकरत्व का भव्य प्रासाद निर्मित होना शेष है। अब तक उस बुनियाद की चर्चा की। आगे महल की चर्चा होगी।

पर्यूषण पर्व की यह पावन वेला हमें और आपको धर्मवृद्धि दे, यही मंगल कामना करते हैं। सभी भाई बहन सामायिक-दया पौषध का भाव रखें तथा सायंकाल प्रतिक्रमण अवश्य करें। हो सके तो रात का संवर भी करें। हमारे वाचन में कोई कमी हो तो अपना भाई, साथी, बच्चा समझकर सलाह दें या माफ करें।

– जय जिनेन्द्र

अन्य उपयोगी भजन

तर्जः– बात सुणो श्री मयाराम जी म. (हरियाणवी)

जय होवे वर्धमान श्री महावीर तुम्हारी जय होवे,
देवाधिदेव भगवान् श्री महावीर तुम्हारी जय होवे ॥टेक॥

1. नन्दन के भव में संयम की नींव जमाई थी ऐसी,
चित्त समाधिज्ञान ध्यान की ज्योत जलाई थी ऐसी,
तपे निरन्तर, लम्बे तप की धुनी रमाई थी ऐसी,
बीस बोल की करी साधना राह बनाई थी ऐसी,
हो झटपट कल्याण श्री महावीर तुम्हारी जय होवे...

2. क्षत्रिय कुण्ड जन्म भूमि में दशम स्वर्ग से थे आए,
चौदह स्वप्नों से त्रिशला माता के तन मन हर्षाए,
श्री सिद्धार्थ पिता के सारे सिद्ध अर्थ थे करवाए,
चिन्ताएँ थी मिटी विश्व की ले प्रकाश जब तुम आए,
चिन्तामणि के समान श्री महावीर तुम्हारी जय होवे...

3. भरी जवानी में संयम का भारी भार उठाया था,
भूख प्यास सर्दी गर्मी का बिल्कुल भान भुलाया था,
कष्टों और उपसर्गों का तूफान कोई जब आया था,
क्षमा श्रमण ने क्षमाशीलता से सहकर दिखलाया था,
शीतल स्थिर हिमवान् श्री महावीर तुम्हारी जय होवे...

4. केवल ज्ञान हुआ बरसाई ज्ञान मेघ से श्रुतवाणी,
तार दिए संसार जलधि से शीघ्र अनेक भविक प्राणी,
चली तुम्हीं से मुनियों की ये है परम्परा कल्याणी,
सभी कार्य सम्पन्न हुए फिर आप हो गए निर्वाणी,
पाया सिद्धि स्थान श्री महावीर तुम्हारी जय होवे...

तर्ज– जय बोलो जय बोलो श्री वीर प्रभु-

आए हैं करने मंगलाचार पर्यूषण आए हैं,
लाए हैं वीर प्रभु का प्यार पर्यूषण लाए हैं– ॥टेक॥

1. है इतिहास पुराना अपना, नहीं कल्पना कोरा सपना,
लिए सत्य आधार पर्यूषण ॥

2. वीर थे 24वें तीर्थंकर, 23 पहले हुए जिनेश्वर,
दिखलाने विस्तार पर्यूषण ॥

3. उनकी पावन उज्ज्वल कृतियाँ, युग बीते फिर भी कुछ स्मृतियाँ,
ले नवीन संस्कार ॥

4. सत्य अहिंसा संयम के स्वर, महावीर की दृष्टि सुन्दर,
देने को उपहार ॥

5. वाणी प्रभु की थी चिरस्थायी, बनकर मंगलमय शहनाई,
बजे द्वार प्रतिद्वार ॥

6. है प्रवाह में अति पंकिलता, है समाज में आज शिथिलता,
देने गति संचार ॥

द्वितीय प्रवचन

भजनः–

तर्जः–चांदी की दीवार न तोड़ी.. ,

चौदह महास्वप्न तीर्थंकर की माता को आते हैं,
जो सृष्टि में तीर्थंकर की महिमा को जतलाते हैं ॥

1. श्वेत हस्ती की गति और उद्घोष मनोहर होता है,
   उन्नत स्कन्ध वृषभ धरती का भार अकेला ढोता है,
   निर्भय सिंह सभी के मन में सोए भय को खोता है,
   कमल वासिनी लक्ष्मी को दिग्गज अभिषेक कराते हैं ॥

2. सब ऋतुओं और सब वर्णों के सुरभित पुष्पों की माला,
   शुभ्र कान्ति परिपूर्ण चन्द्रमा आह्लादित करने वाला,
   सहस्र रश्मि से मंडित रवि ने किया छिन्न तमस काला,
   उच्च ध्वजा लहराती है तो सबके मन लहराते हैं ॥

3. कमलों से परिवेष्टित निर्मल नीर-पूर्ण है स्वर्ण कलश,
   पद्मगन्ध से वासित होता पद्म सरोवर सजल सरस,
   जलजन्तु-संकीर्ण क्षीर सागर हरता मन को बरबस,
   सुर विमान से देव देवियाँ दुंदुभि घोष सुनाते हैं ॥

4. त्रिभुवन-दुर्लभ महामूल्य थी प्रभायुक्त रत्न राशि,
   धूमरहित अग्नि की ज्वाला भासमान और तमनाशी,
   सपनों का फलितार्थ है, पाएँ सुख आनन्द जगतीवासी,
   चार गति के जीव प्रभु के पग में शीश झुकाते हैं ॥

वीतराग प्रभु महावीर स्वामी एवं पूज्य गुरुदेवों को वन्दन करते हुए आप सबको जय जिनेन्द्र। हमारा असीम सौभाग्य है कि हमें उत्तम जैन

धर्म मिला। जैन धर्म के सर्वोत्तम पर्व पर्यूयणों की आराधना में हमें लीन होने का मौका मिला है, ये हमारा दूसरा सौभाग्य है। फिर हमें चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर की वाणी और उनकी जिन्दगानी सुनने का अवसर भी प्राप्त हो रहा है, तो हमसे ज्यादा सौभाग्यशाली और कौन होगा। प्रातः काल अन्तगड़ की वाचना और दोपहर को कल्पसूत्र की व्याख्या सुनकर सुनाकर हम धन्य-2 हो रहे हैं, इस अवसर से किसी को चूकना नहीं है।

गुजरने को गुजर जाती है उम्रे शादमानी में।
ये मौके कम मिला करते हैं अक्सर जिन्दगानी में ॥

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं–

'सुत दारा और लक्ष्मी पापी के भी होय।
सन्त समागम हरि कथा तुलसी दुर्लभ दोय ॥'

धन परिवार और भोग की प्राप्ति के अवसर प्रायः मिलते ही रहते हैं, परन्तु अच्छे पुरुषों की संगति तथा भगवान् की कहानी सुनने को कहाँ मिलती है?

जिनवाणी पावन गंगा में धोना सकल विकार है।
भवरोगों की परम औषधि ज्ञान विवेक विचार है ॥

जिनवाणी-श्रवण के प्रसंग में ही हमने कल जाना कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के जीवन ने पूर्व भवों में किस-2 पड़ाव पर क्या-2 किया, और आज उस परम पिता के गर्भ-जन्म-बचपन और गृहस्थ जीवन की कुछ झलकियाँ प्रस्तुत करने का मन है।

प्राणत देवलोक से च्यवन कर प्रभु का आगमन देवानन्दा की कुक्षि में हुआ। उस कल्याणक को celebrate करने के लिए प्रथम देवलोक के इन्द्र शक्रेन्द्र ने क्या तैयारी की, उसका वर्णन करते हुए कल्पसूत्रकार फरमाते हैं कि जब इन्द्र अपनी सुधर्मा सभा में बैठा था तब 32 लाख

विमानों के 84 हजार सामानिक देव, 33 त्रायस्त्रिंश, 4 लोकपाल, 8 अग्रमहिषियाँ तथा अन्य देवी देवता तो स्वर्गीय सुखों का आनन्द उठा रहे थे, पर शक्रेन्द्र का ध्यान जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध भरत में ब्राह्मण कुण्ड ग्राम में था, जहाँ भावी तीर्थंकर माँ की गोद में पर्याप्ति पूर्ण कर रहे थे। शक्रेन्द्र ने सर्वप्रथम सिंहासन से उतरकर नमोत्थुणं के पाठ से भावी तीर्थंकर को वन्दना करी। शक्रेन्द्र ने स्तुति में जो शब्द पढ़े वही आज 'शक्रस्तव' के नाम से 'नमोत्थुणं' के रूप में हमारे सामने हैं। नमोत्थुणं का पाठ बड़ा मंगलकारी पाठ है। नवकार मन्त्र के बाद जैन धर्म में लोगस्स तथा नमोत्थुणं के पाठ की ही अधिक महत्ता है। भक्तामर तथा उपसर्गहर स्तोत्र इसके बाद आते हैं। इस पावन स्तव से इन्द्र तीर्थंकर भगवन्तों के गुणों को नमस्कार करते हैं।

वन्दना के बाद इन्द्र के मन में एक विचार कौंधा कि भावी तीर्थंकर का जन्म तो क्षत्रिय और राजाओं के घर में होता है, ब्राह्मण परिवार में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि का जन्म नहीं होता, हाँ अनन्त काल में आश्चर्य-अच्छेरे के रूप में ऐसा हो सकता है कि वह क्षत्रिय से भिन्न अन्य माँ की कुक्षि में भले ही आ जाए, पर उनका जन्म अर्थात् संसार के सामने प्रादुर्भाव क्षत्रिय माँ से ही होता है। अब ऐसी स्थिति में मैं क्या करुं? क्योंकि ऐसे मौके शक्रेन्द्र का ही दायित्व होता है कि शाश्वत परम्पराओं का पालन करवाए। सोचते-2 शक्रेन्द्र को ध्यान आया कि महावीर स्वामी के गर्भ को क्षत्रियकुण्ड ग्राम वासी सिद्धार्थ राजा की महारानी त्रिशला देवी की कुक्षि में स्थापित करवा दूं तथा त्रिशला के गर्भ को देवानन्दा की कुक्षि में। और गर्भ से सम्बन्धित कार्यों का सम्पादन करने का अधिकार हरि-नैगमेषी देवता का है अतः उसे ये काम सौंप दूं। इन्द्र ने उसे बुलाया और सम्पूर्ण व्यवस्था समझाकर आदेश दिया कि उचित समय पर दोनों गर्भों का परिवर्तन करके मुझे सूचना देना। वो देवता उचित समय की प्रतीक्षा में है।

प्रश्न पैदा होता है कि क्या जैन धर्म जातिवाद को मानता है? तथा जातिवाद में भी वह ब्राह्मण को तुच्छ और क्षत्रिय को उच्च

मानता है? यदि ईमानदारी से कहें तो बात ये है कि जैन धर्म मूलतः तो जातिवाद को नहीं मानता, पर कुछ-2 जातिवाद से प्रभावित भी है अर्थात् जैन धर्म 90% तो जातिवाद के विरुद्ध है और 10% समर्थन में है। जैन धर्म के प्रथम आगम श्री आचारांग जी में कहा है– **"से असइं उच्चागोए असइं नीयागोए नो हीणे नो अइरित्ते"** अर्थात् ये आत्मा अनन्त बार बड़े घरानों में, अनन्त बार छोटे घरानों में पैदा हो चुकी फिर भी न बड़ी हुई, न छोटी हुई। **"तम्हा को गोयावाई को माणावाई"** इसलिए गोत्रवाद या मानवाद से क्या करना? श्री उत्तराध्ययन में स्पष्ट वर्णन है कि **"कम्मुणा बम्हणो होई, कम्मुणा होई खत्तिओ। वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥"** अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र कर्म से होता है, जन्म से नहीं। हरिकेशी मुनि, मेतार्य मुनि को दीक्षा देना जैन धर्म की जातिवाद के खिलाफ खुली चुनौती है। इतना होते हुए भी 'जाई सम्पन्ने कुल सम्पन्ने' आदि शब्दों से कहीं-2 जातिवाद को बल भी मिलता है। जातिवाद की शत प्रतिशत खिलाफत तो नहीं है फिर भी जैन धर्म जातिवाद को नहीं मानता ऐसा कहा जा सकता है।

फिर ब्राह्मणी से त्रिशला की कुक्षि में तीर्थंकर के गर्भ परिवर्तन की क्यों आवश्यकता पड़ी? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जाएगा कि जैन धर्म ने ब्राह्मणों को सर्वथा हीन नहीं माना और क्षत्रियों को सर्वथा उच्च नहीं माना। ज्ञान की दृष्टि से ब्राह्मण बड़ा है तो दान की दृष्टि से क्षत्रिय। चूंकि तीर्थंकर दीक्षा से पूर्व वर्षीदान देते हैं और तत्कालीन व्यवस्था में ब्राह्मण दान लेता था, दे नहीं सकता था। समग्र भारत में ब्राह्मण को याचक के रुप में निहारा गया था, दाता के रूप में नहीं और जैनत्व को यह गवारा नहीं हुआ कि त्रिलोक पूज्य तीर्थंकर या सर्वभूमि सम्राट् याचक के रूप में धरती पर अवतीर्ण हों, इसलिए ब्राह्मण के बजाए क्षत्रिय को अधिक मान दिया गया। हाँ, जैन धर्म में ब्राह्मण के प्रति असम्मान भी नहीं है, भगवान् महावीर के लिए महाब्राह्मण विशेषण लगाया गया, भगवान् महावीर के सभी गणधर ब्राह्मण थे। श्री

उत्तराध्ययन जी में मुनिचर्या का पालन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को ब्राह्मण कहकर पुकारा गया है। इसलिए ब्राह्मण को छोटा तथा क्षत्रियों को बड़ा कहना भी प्रसंग-2 पर निर्भर करता है। केवल तीर्थंकर के लिए क्षत्रिय होना यहाँ जरूरी दिखाया है। यहाँ यह भी बताना जरूरी है कि जैनों की ही दिगम्बर परम्परा में गर्भ परिवर्तन का उल्लेख नहीं है, वहाँ Direct ही त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में उनका अवतरण दिखाया जाता है।

भगवान् महावीर के जीव को देवानन्दा की कुक्षि में 82 दिन रात हो गए तब हरिनैगमेषी देवता ने गर्भ-परिवर्तन के लिए अनुकूल अवसर समझा क्योंकि गर्भ विशेषज्ञों के अनुसार लगभग 3 महीने के समय में गर्भ का तरल रूप ठोस हो जाता है, उसे इधर उधर किया जा सकता है। हरिनैगमेषी देवता ने उत्तर विक्रिया करके पृथ्वी पर आने योग्य रूप बनाया। तथा किसी को भी कष्ट न पहुंचाते हुए दोनों माताओं को सुलाकर दोनों के गर्भ आपस में Transfer कर दिए। और शीघ्र ही कार्य सम्पन्न करके इन्द्र महाराज को इत्तिला कर दी। भगवान् महावीर 3 ज्ञान के धारक होते हुए भी ये नहीं जान पाए कि मेरा संहरण हो रहा है। क्योंकि सारा कार्य अति शीघ्रता से हो गया। गर्भ-परिवर्तन की ये घटना आसोज बदी तेरस की है, इस घटना का देवानन्दा को स्पष्ट रूप से तो कुछ पता नहीं चला पर अवचेतन मन से उसे सोते-2 अथवा अर्धनिद्रा में ऐसा अहसास अवश्य हुआ कि त्रिशला ने मेरे चौदह महास्वप्न चुरा लिए। और उसी रात त्रिशला रानी ने 14 स्वप्न देखे

भजनः–

तर्जः– मेरा छोटा-सा संसार

गाना है वीर गुणगान पाना है धर्म वरदान,
था जीवन चरित महान् सुनने से हो कल्याण ॥टेक॥

देवानन्दा की गोद मिली, फिर त्रिशला की थी कली खिली,
चौदह सपने हैं प्रमाण, सुनने से ॥

रानी त्रिशला 14 स्वप्न देखकर जाग गई। कल्पसूत्र में उन 14 स्वप्नों का बड़ा सुन्दर काव्यात्मक तथा आलंकारिक चित्रण है। पहले स्वप्न में 4 दांत वाले अत्यन्त स्वच्छ और श्वेत वर्ण के हाथी के सामने चन्द्रमा और दूध का रंग भी फीका था। दूसरे स्वप्न में सुगठित अंग वाला, प्रमाणोपेत कद वाला वृषभ देखा तीसरे स्वप्न में सिंह के दर्शन हुए, विशाल आकार वाला वह सिंह आकाश से उतरते-2 मानो त्रिशला के मुख में प्रवेश कर गया। चौथे स्वप्न में सौन्दर्य की प्रतिमा, आभूषणों से सुसज्जित लक्ष्मी देखी अनेक दिग्गज जिसका अभिषेक कर रहे थे। पांचवें स्वप्न में फूलों की माला देखी जिसमें गुलाब, जूही, मोगरा, मल्लिका आदि अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्प गूंथे हुए थे तथा उस पर भंवरे मंडरा रहे थे। छठे स्वप्न में पूर्ण चन्द्रमा देखा जो सम्पूर्ण आकाश मण्डल को उद्द्योतित कर रहा था तथा पृथ्वी को चांदनी से नहला रहा था। सातवें स्वप्न में मेरु पर्वत का चक्कर लगाते हुए सूर्य को देखा जो अपनी किरणों से अंधकार को नष्ट करने के साथ-2 कमल राशि को खिला रहा था। आठवें स्वप्न में विशाल ध्वजा देखी जो गगन को चुनौती दे रही थी। नौवें स्वप्न में नयनों को लुभाने वाला तथा जल से भरपूर चांदी का पूर्ण कलश देखा। दसवें स्वप्न में विशाल पद्म सरोवर देखा जिसमें अनेक प्रकार के कमल खिले हुए थे। ग्यारहवें स्वप्न में ऊंची-2 लहरों से हृदय को आन्दोलित करने वाला, नक्र-चक्र, मकरों से लबालब क्षीरसागर ठाठें मार रहा था। बारहवें स्वप्न में नाना प्रकार के चित्रों से सज्जित, सुगन्ध से भरपूर, सफेद रंग का देव विमान देखा। तेरहवें स्वप्न में रत्नों की इतनी ऊंची राशि देखी मानो रत्नों का मेरु पर्वत ही सामने खड़ा हो। अन्तिम स्वप्न में त्रिशला देवी ने धुएँ से रहित अग्नि देखी जिसकी ज्वालाएँ गगन को छू रही थी, तथा अंधकार से युद्ध कर रही थी।

इन स्वप्नों को याद कर करके त्रिशला का रोम-2 पुलकित हुआ जा रहा था, वह आनन्द के गहरे सागर में गोते खाने लगी। सोचा— क्यों नहीं, इन सुखद क्षणों को अपने पतिदेव राजा सिद्धार्थ से बाँट लूं। **"खुशी बाँटने से बढ़ जाती है, गम बाँटने से घट जाता है।"** राजहंसिनी

की तरह चलती हुई महारानी अपने पति के शयन कक्ष तक पहुंची, मधुरालापों से जगाने लगी, जागने पर उनके बगल में भद्रासन पर बैठी और 14 ही सपनों का इतिवृत्त कह सुनाया। तथा इन सपनों का फल पूछा। सिद्धार्थ तो इन स्वप्नों को सुनकर ही भावविभोर हो गए तो भी विचार विमर्श करके यही निर्णय निकाला कि ये सब लक्षण किसी भावी मंगल के सूचक हैं अतः अपने मनोभावों को शब्द देते हुए कहने लगे कि हे देवी! तुम्हारे स्वप्न बड़े मंगल रूप है, हमें और तुम्हें अर्थ, काम की प्राप्ति के साथ-2 पुत्र लाभ भी होगा। और होने वाला पुत्र हमारे कुल को समृद्धि के शिखर तक पहुंचा देगा। वह पुत्र बड़ा होकर वीर बलवान राज्याधीश बनेगा। इसलिए मेरे विचारानुसार तुम्हारे स्वप्न अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। पतिदेव के प्रिय शब्दों से संतुष्ट और आश्वस्त देवी ने पतिदेव के वक्तव्य की अनुमोदना की तथा उनकी अनुमति लेकर अपने शयन कक्ष में आ गई। रात्रि का अन्तिम प्रहर शेष था, सोचा— इतने बढ़िया स्वप्न देखकर अब सोना नहीं चाहिए अतः शेष रत्रि धर्म चिन्तन तथा गीत आदि में व्यतीत की।

तर्जः मैं तुलसी तेरे आंगन की

अपूर्व अवसर आया है, प्रभु ने मुझको बुलाया है ॥

कदम बढेंगे वो नहीं मुड़ेंगे, उड़ने वाले रंग उड़ेंगें,
धर्म का रंग चढ़ाया है ॥

माया मद और मोह मिटाऊं, मन के सब तूफान दबाऊं,
वश में करनी काया है ॥

अगले दिन राजा सिद्धार्थ विविध व्यायामों के बाद सुगन्धित जल में स्नान करके, सुन्दर वस्त्र आभूषण पहनकर पूर्ण राजकीय वैभव के साथ, छत्र चंवर से सुशोभित, प्रमुख सामन्त वर्ग से घिरे हुए राजसभा में पधारे तथा सिंहासन पर बैठ गए, तथा सेवकों के जरिये कुशल विद्वान् स्वप्न पाठकों को आमन्त्रित किया। एक पर्दा डलवाकर महारानी

त्रिशला का भद्रासन बिछवा दिया। स्वप्न पाठक भी सजधज कर दरबार में आए और भद्रासनों पर बैठ गए। राजा ने कहा— हे देवानुप्रियों! मेरी रानी ने ऐसे-2 चौदह महास्वप्न देखे हैं उनका फल बताओ? स्वप्न पाठकों ने अपने शास्त्रों का हवाला देते हुए कहा— महाराज! स्वप्न शास्त्र में 72 स्वप्नों का वर्णन आता है जिनमें 42 तो सामान्य स्वप्न कहलाते हैं तथा 30 महास्वप्न। उन 30 महास्वप्नों में 14 सपने नारी को तब दिखाई देते हैं जब उसकी कुक्षि में तीर्थंकर या चक्रवर्ती का आगमन होता है। वासुदेव की माँ 7 महास्वप्न देखती है, बलदेव की माँ 4 तथा माण्डलिक राजा की माँ कोई एक। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि त्रिशला रानी की कुक्षि से उत्पन्न होने वाला बालक आपके वंश और कुल के लिए तो अवलम्ब बनेगा ही साथ ही वह सृष्टि के कुशल क्षेम का विधाता या तो चक्रवर्ती बनेगा या तीन लोक का नायक जिनेन्द्र धर्मचक्री तीर्थंकर बनेगा। इसलिए आपको बहुत-2 बधाई है।

स्वप्नों के इस सुन्दर स्वरूप को जानकर राजा सिद्धार्थ परम प्रफुल्लित हुए। उनके वचनों को स्वीकार करते हुए उनको विपुल अर्थ राशि से सन्तुष्ट किया फिर महारानी त्रिशला को स्वप्न पाठकों के द्वारा बताए फल का सम्पूर्ण विवरण दिया। और उसकी खुशी में कई गुणा वृद्धि की। परिवार में हर्ष और उल्लास की लहरें बहने लगी। तीर्थंकर प्रभु के पधारने पर कमी भी क्या रह सकती थी? सबसे बड़े आश्चर्य की बात ये होने लगी कि भगवान् महावीर जबसे त्रिशला की कुक्षि में आए तभी से कुबेर देवता के अधीनस्थ जृम्भक देवताओं ने धरती पर स्थान-2 पर गड़े हुए या पड़े हुए स्वामीहीन खजाने सिद्धार्थ राजा के घर पर पहुंचाने शुरु कर दिए। और ज्ञात कुल में भी उसी दिन से सोने चांदी, धन धान्य कोष, यश की वृद्धि होने लगी। इस निरन्तर वृद्धि से प्रभावित माता पिता ने मन ही मन में संकल्प कर लिया कि ये सारी वृद्धि गर्भस्थ बालक के पुण्य से ही हो रही है। इसलिए हम इस पुत्र का नाम 'वर्धमान' रखेगें।

माता पिता जिस तरह अपने भावी पुत्र की सुखद कल्पनाओं में डूबे जा रहे थे उसी तरह गर्भस्थ पुत्र भी अपने माता-पिता के सुख-सम्पादन के चिन्तन में निमग्न थे। भगवान् महावीर ने सोचा कि मैं अपने शरीर की सारी हलचल बन्द कर लेता हूँ ताकि मेरी माँ को मेरे शरीर का भार मालूम न हो। अतः निस्पन्द निश्चेष्ट हो गए, परन्तु गर्भ की चेष्टा बन्द होने से त्रिशला माँ तो अन्य कुशंकाओं से घिर गई, वह चिन्तित हो गई कि या तो मेरा गर्भ गिर गया या मर गया या अपहृत हो गया। इस कल्पना से ही उसकी सारी खुशियाँ नदारद हो गई, खाना पीना हंसना बोलना बन्द, उदास मन से बैठी रहती, किसे अपने मन की व्यथा सुनाए। जब प्रभु ने माँ की ये अवस्था देखी तो उन्होंने आंशिक कम्पन प्रारम्भ कर दिया, तब माँ की जान में जान आई और उसकी खोई हुई खुशियाँ फिर लौट आई।

भगवान् महावीर का चिन्तन चलने लगा कि देखो माता पिता का सन्तान के प्रति कितना मोह भाव होता है, अभी उन्होंने मेरी शक्ल भी नहीं देखी तो भी मेरी जरा सी हरकत से मेरी माँ व्याकुल हो उठी, मैंने तो अच्छे के लिए ये विधि अपनाई थी लेकिन इसके लिए तो यही कष्टदायक हो गई। मोह भाव के कारण शुभ भाव भी हानि के कारण बन जाते हैं। प्रभु ने सोचा– मैं अपनी किसी भी क्रिया से माता-पिता को कष्ट नहीं होने दूंगा और प्रभु ने गर्भ में रहते हुए ही ऐसी प्रतिज्ञा कर ली जो विश्व में कहीं भी सुनी नहीं होगी, उन्होंने सोचा– 'जब तक मेरे माता-पिता जीवित रहेगें तब तक मैं गृहत्याग नहीं करुंगा।

भजनः–

तर्जः मेरा छोटा-सा संसार

गाना है वीर गुणगान, पाना है धर्म वरदान,
था जीवन चरित्र महान्, सुनने से हो कल्याण ॥टेक॥

कुक्षि में तन स्पन्दन रोका, मेरु भी अंगूठे से कांपा,
हुआ इन्द्र को शक्ति ज्ञान ॥

जैन धर्म में दीक्षा-सन्यास-प्रव्रज्या जैसी महान् साधना के लिए जहाँ निरन्तर प्रेरणा दी जाती है, वहीं पारिवारिक सम्बन्धों की पवित्रता अखण्डता रखने की भी सावधानी दी जाती है। परिवार के स्तर पर माता-पिता का सम्मान और सेवा प्रत्येक सन्तान का फर्ज बताया गया है। श्री स्थानांग-सूत्र में तो माता-पिता, कला-शिक्षक, धर्मगुरु इन तीन के उपकार तथा ऋण को चुकाना अति कठिन भी बताया है। श्रवण ने अपने माता-पिता को बहंगी में बिठाकर तीर्थयात्रा करवाई थी। श्री रामचन्द्र जी ने पिता की आज्ञा का पालन करने हेतु 14 वर्ष का वनवास स्वीकार किया। श्रीकृष्ण और बलभद्र जी अपने माता पिता को रथ में बैठाकर जूए में बैल-घोड़ों की जगह जुत गए थे। इन भारतीय आदर्शों को जैन धर्म ने पूरी तरह स्वीकार किया है और भगवान् महावीर द्वारा गर्भावस्था में की गई यह प्रतिज्ञा एक नूतन आयाम को स्थापित कर रही है।

यं कष्टं माता-पितरौ सहेते संभवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्ष शतैरपि ॥

अर्थात् अपनी सन्तान के जन्म और उत्थान में माता-पिता जिन कष्टों के दौर से गुजरते हैं, उन कष्टों का प्रतिदान सैंकड़ों वर्षों में भी नहीं दिया जा सकता।

पंजाबी भाषा के एक कवि ने बड़ी ही माकूल लाईनें लिखी हैं:—

ओत्थे लोड़ की है कीकरां टालियाँ दी
जित्थे बोड़ दी सघनी छांह होवे,
ओहनू लोड़ की है तीरथां ते जावणे दी
जिहदे घर रब्ब बरगी माँ होवे,
माता उच्चा तीरथ लोको जिहनूं रब्ब वी शीश नमावे,
जिन्हाँ रज्ज सेवा किती माँ पैया दी ओह दुक्ख कदी ना पावे ॥

त्रिशला माँ का लाड़ला बेटा उसकी शान्त कुक्षि में पल रहा था और माँ भोजनादि के पूर्ण संयम के साथ उसका पालन कर रही थी। माँ की किसी भी स्वल्प सी इच्छा को महाराज तथा देवगण पूरा कर देते थे ताकि कभी भी आर्तध्यान की काली रेखा उसके चेहरे पर न आए। क्रमशः वह दिन भी आ गया जिसकी प्रतीक्षा में देव मानवों सहित समूची सृष्टि पलक पांवड़े बिछाए बैठी थी।

ग्रीष्म ऋतु कहें कि बसन्त चैत्र सुदी त्रयोदशी थी, स्वच्छ आकाश था, शान्त पवन प्रवहमान था, ऐसे मनोनुकूल मौसम में त्रिशला देवी ने नीरोग पुत्र को जन्म दिया।

'नहीं खुशियों का अन्त, खिला अदभुत बसन्त।
झूमे धरती तथा आसमान, जब आए थे वीर वर्धमान'॥

क्षण भर के लिए समग्र संसार में अनुत्तर प्रकाश फैल गया, नारकी जीवों को भी सुख की क्षणिक अनुभूति हुई। भगवान् के जन्मोत्सव पर देव देवियों के गमनागमन से एक लहर-बहर छा गई, 56 दिशा कुमारियाँ प्रस्तुत हुई, जृम्भक देवों ने स्वर्ण, रत्न और हीरों की बौछार के साथ-2 वस्त्र, आभरण, पुष्प, फलों तथा गन्ध और चूर्ण (Powder) की वृष्टि भी की, 64 इन्द्रों ने मिलकर मेरु पर्वत पर प्रभु का अभिषेक किया। इन्द्र को शंका हुई कि नवजात शिशु पर जलधारा की वृष्टि का विपरीत प्रभाव तो नहीं पड़ेगा, पर प्रभु ने अपने पैर के अंगूठे से मेरु पर्वत को हिलाकर अपनी अनन्त शक्ति का प्रमाण इन्द्र को दे दिया। प्रातः काल ही राजा सिद्धार्थ ने सकल नगर को सजवाया और महोत्सव प्रारम्भ किया। जेलों-कारगृहों में पड़े लोगों को रिहा किया। कर्जदारों के कर्ज माफ किए तथा 8 दिन तक आनन्द प्रमोद की घोषणा करवा दी, लाखों करोड़ों उपहार आए तथा उसी अनुपात में महाराज ने दिए। बारहवें दिन बहुत बड़ी दावत का आयोजन किया गया और बाद में सबके सन्मुख बालक का पूर्व चिन्तित "वर्धमान" नाम रखा गया। भगवान् के जन्म पर एक गीत से अपने भावों को प्रशस्त बनाएंगें।

तर्जः– सावन का महीना

चैत सुदी तेरस को छाई थी बहार,
कुण्डलपुर महावीर पधारे बोलो जय जयकार ॥1॥

त्रिशला ने देखे शुभ चौदह सपने,
होके प्रसन्न बैठी प्रभु नाम जपने,
पाया मनोमोहक सलौना सा कुमार ॥2॥

सब इन्द्रों ने कर कर के दर्शन,
शीश झुकाया कहा क्या है छवि नूतन,
प्रेम में दिवाने होके रहे हैं निहार ॥3॥

भीड़ जुटी मेरु पर्वत पर,
अभिषेक शिला पर विराजते हैं जिनवर,
बरसी कंचन तन पर प्रबल जलधार ॥4॥

सिद्धार्थ नृप हैं उत्सव करते,
सबके हृदय में अति उल्लास भरते,
दान में लुटाए कुबेर के भण्डार ॥5॥

वृद्धि का कारण जान लिया था,
वर्धमान शुभ नाम दिया था,
नाम ये करेगा सभी का बेड़ा पार ॥6॥

अब सामान्य मानव मन में ये जिज्ञासा उत्पन्न होती है जब माता-पिता ने उस बालक का नाम वर्धमान रखा था तो उन्हें 'महावीर' नाम से क्यों जाना जाता है? दूसरी जिज्ञासा होती है कि वे अपने आपको किस शब्द से परिचित करवाते थे? कल्पसूत्र में इसका बड़ा तर्क संगत उत्तर दिया है कि काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर के 3 नाम अधिक प्रचलित रहे– पहला नाम माता पिता का दिया नाम

था 'वर्धमान' तथा वे अपने आपको केवल 'श्रमण' कहते थे। तीसरा नाम प्रचलित हुआ उत्कृष्ट साधना के कारण। वे भयंकर से भयंकर परीषह-उपसर्गों में भी विचलित नहीं होते थे, बड़े सहनशील तथा वीर्य सम्पन्न थे, इस महान् वीरता के कारण महावीर कहलाते-2 देवों ने उनका पूरा नाम प्रचलित किया "श्रमण भगवान् महावीर"।

कथा ग्रन्थों में वर्णन मिलता है कि देवता उनके बल की परीक्षा करने आए और एक देवता ने उनको अपनी पीठ पर बैठाकर अपना विकराल रूप बना लिया, तब वर्धमान ने वीरता पूर्वक उसकी कमर पर मुक्का मारा और वह देवता वेदना से कराह उठा। इसी तरह एक देव ने सर्प के रूप में उन्हें डराने की कोशिश की तो भगवान् ने उस सांप से बिना डरे उसे एक तरफ झाड़ियों में छोड़ दिया, प्रारम्भ से ही उनकी वीरता की कहानियाँ प्रसिद्ध हो गई थी।

वर्धमान को पढाने के लिए गुरुकुल भी भेजा गया लेकिन वे जन्म से ही 3 ज्ञान के धारक थे। अध्यापक के सामने जाने पर इन्द्र महाराज ब्राह्मण का रूप बनाकर आया और विविध प्रकार के प्रश्न पूछने लगा। अध्यापक को उन प्रश्नों का उत्तर नहीं आया तो वर्धमान ने उनका सही-2 उत्तर दिया। बालक के अलौकिक ज्ञान को देखकर अध्यापक ने उसे वापिस माता-पिता को ये कहकर सौंप दिया कि ये तो सारे ज्ञान का स्वयं ही स्वामी है मैं इसे क्या पढाऊँ?

कल्पसूत्र में भगवान् के परिवार को बड़ा विस्तृत परिचय दिया है जो इतिहास के लिए बहुत बड़ी सामग्री प्रदान करता है। यद्यपि हमारी दिगम्वर परम्परा को कुछ आँकड़े मान्य नहीं है पर हम तो इस समय कल्पसूत्र का अर्थ आपके सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। अतः किसी भी मान्यता के पक्ष विपक्ष में न जाकर आगम तक अपने को सीमित रखेगें।

भगवान् महावीर के पिता का गोत्र 'काश्यप' था तथा उनका मुख्य नाम 'सिद्धार्थ' था, पर उन्हें कहीं-2 श्रेयांस तथा यशस्वी नाम से भी पुकारा जाता था। उनकी माँ का गोत्र 'वशिष्ठ' था, मुख्य नाम तो 'त्रिशला' ही था पर विदेहदत्ता तथा प्रियकारिणी इन दो सम्बोधनों से

भी बुलाई जाती थी क्योंकि उनका पीहर विदेह में था तथा वे सबका प्रिय काम करती थी। भगवान् के चाचा का नाम सुपार्श्व था, बड़े भाई थे नन्दीवर्धन, बड़ी बहन थी सुदर्शना। उनकी पत्नी का नाम यशोदा था जो कौडीन्य गोत्रीय कलिगंराज की पुत्री थी। यद्यपि महावीर का मन विवाह करने का नहीं था पर वे अपने माता पिता की आज्ञा के विपरीत नहीं जा सकते थे। उन्हें मानसिक दुख हो ये बात महावीर को गर्भ से ही नापसन्द थी, अतः उनकी खुशी के लिए उनकी आज्ञा से कलिंग के राजा समरवीर की पुत्री यशोदा से उनका विवाह हुआ। उसकी कुक्षि से उन्हें एक पुत्री की प्राप्ति हुई जिसका नाम तो रखा था 'अनवद्या' पर प्रसिद्ध हुई वह 'प्रियदर्शना' नाम से। प्रियदर्शना की भी एक बेटी हुई उसको शेषवती या यशस्वती के नाम से जाना गया।

भजनः–

तर्ज – वादा न तोड़

महावीर का, प्रभु वीर का, परिवार है लगता प्यारा ॥टेक॥

1. ब्राह्मण कुण्डग्राम में था ऋषभदत्त ब्राह्मण,
   देवानन्दा देवी उसकी गंगा जैसी पावन,
   अपनी कुक्षि में सूर्य उतारा ॥

2. माता त्रिशला ने फिर उनको बुलाया,
   82 रात बाद हरि-नैगमेषी लाया,
   14 सपनों को था निहारा ॥

3. चेटक मामा ने भेजी बधाई,
   नन्दीवर्धन ने पाया अपना छोटा भाई,
   जय-2 वर्धमान कह के पुकारा ॥

4. सिद्धार्थ से ले चाचा सुपार्श्व ने खिलाया,
   भाई से भतीजा प्यारा कह के दुलराया,
   गाल चूमे और सिर पुचकारा ॥

5. बहन सुदर्शना ने राखी मंगाई,
सोने के धागे से कलाई सजाई,
किया वीर ने उसे पौबारा ॥

6. बचपन बीता फिर आई जवानी,
माता पिता ने उनकी शादी की ठानी,
यशोदा देवी को मिला सहारा ॥

7. बेटी प्रियदर्शना थी लाड़ों में खेली,
गुलशन में खिलता जैसे फूल चमेली,
जिससे महकता था आँगन सारा ॥

8. जमाली कुमार यों तो सुन्दर जवान था,
वीर का जंवाई बन हुआ अभिमान था,
पर इक केसर थी इक था गारा ॥

9. कोई पहुंचा स्वर्ग कोई पहुंचा अपवर्ग में,
कमी नहीं रही महावीर-संसर्ग में,
मिला शान्ति का दिव्य नजारा ॥

(ये भजन समय के अभाव में छोड़ा जा सकता है।)

भगवान् महावीर का गृहस्थ जीवन बड़ी सहजता से व्यतीत हो रहा था, उनके मन में दीक्षा का भाव तो था पर माता पिता की सेवा की ओर भी उनका पूरा ध्यान था। उनकी प्रसन्नता के लिए महावीर सदा प्रयत्नशील रहते थे, यशोदा से भी उनका बड़ा प्रेमपूर्ण सम्बन्ध था। जब उनकी 28 वर्ष की आयु हुई तब उनके माता पिता अपनी परलोक यात्रा की तैयारी करने लगे। भगवान् महावीर ने भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के अनुसार उन्हें पूरी तरह धर्म का शरणा दिया क्योंकि उनके माता पिता भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के श्रावक थे। अन्तिम समय में उन्हें संलेखना संथारा करवा दिया और वे दोनों देवलोक में गए। उनके स्वर्गवास के बाद भगवान् की प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई थी

अतः अपने बड़े भाई से उन्होंने दीक्षा की आज्ञा माँगी पर नन्दीवर्धन ने उनसे कुछ और ठहरने की विनति की। उन्होंने अपने भाई की बात भी नहीं टाली और घर में ही रहकर तप साधना करनी प्रारम्भ कर दी। जमीन पर शयन करते, ब्रह्मचर्य का पालन करना प्रारम्भ कर दिया, सचित्त वस्तुओं का प्रयोग बन्द कर दिया तथा द्वादश अनुप्रेक्षाओं के गहनतम चिन्तन में लीन रहने लगे। अब वे अपने गृहस्थ जीवन के आखरी दौर से गुजर रहे थे।

बस, आज इतना ही। पिछले भजन की ही कुछ और कड़ियांः–

तर्जः– मेरा छोटा-सा संसार

गाना है वीर गुणगान, पाना है धर्म वरदान,
था जीवन चरित्र महान्, सुनने से हो कल्याण ॥टेक॥

था देव हराया क्रीड़ा में, शिक्षक भी हारे शिक्षा में,
बना महावीर वर्धमान ॥टेक॥

माँ बाप की इच्छा आज्ञा थी, इसलिए विवाह की अनुमति दी,
हुई एक पुत्री सन्तान ॥टेक॥

की माता पिता की शुश्रूषा, करवाया अन्त में संथारा,
हुआ शान्तिपूर्ण अवसान ॥टेक॥

भगवान् के घरेलू जीवन से भी हमें प्रबल प्रेरणा मिलली है। हम महापर्वों की आराधना में निरन्तर अग्रसर हैं। सभी भाई बहन बच्चे अप्रमाद भाव से पूरा लाभ लें। बड़ा सुनहरी अवसर है कोई चूकने न पाए। हमारे वाचन में कोई त्रुटि महसूस हो तो सहर्ष परामर्श दें ताकि हम उसका निराकरण कर सकें। सायंकालीन प्रतिक्रमण में अवश्य आएं, व्रत संवर पौषध का मन बनाएँ, क्षमाभाव को विकसित करें तथा अधिक से अधिक त्याग पच्चक्खान में जुटें यही सबको प्रेरणा है।

– जय जिनेन्द्र

अन्य उपयोगी भजनः–

तर्जः–

वो महावीर भगवान् धर्म फैलाने आए थे,
होवे जिससे कल्याण वो पथ दिखलाने आए थे ॥टेक॥

1. हिंसा की जलती ज्वाला, था सब कुछ जलने वाला,
   वो पुष्कर मेघ महान्, यहाँ बरसाने आए थे ॥
2. अपनी अमृतमय वाणी, का दे दे करके पानी,
   मुरझाया धर्म उद्यान, वो फिर सरसाने आए थे ॥
3. जब धर्म संघ का गौरव, मिट रहा था उसमें अभिनव,
   वो पैदा करके जान, उसे चमकाने आए थे ॥
4. भंगी हो चाहे पुजारी, हैं सभी धर्म अधिकारी,
   हैं सब इन्सान समान, यही बतलाने आए थे ॥
5. जन-2 उद्भ्रान्त बना था, संसार अशान्त बना था,
   वो देकर निर्मल ज्ञान, हमें समझाने आए थे ॥
6. अपना उत्थान किया था, सबको वरदान दिया था,
   वो कर उपकार महान्, हमें विकसाने आए थे ॥

तर्जः–चुप-2 खड़े हो जरूर

करने कल्याण प्रभु महावीर आ गए,
अमृत पिला गए वो अमृत पिला गए ॥ टेक ॥

1. हिंसा की क्रूरता से मानव विकल था,
   कोई विरोध करे इतना न बल था,
   महावीर आए इक क्रान्ति सी ला गए ॥

2. धर्म के शरीर में से आत्मा निकल गई,
इसीलिए ही दुनिया थी पापों में ढल गई,
नए प्राण डालकर धर्म को जिला गए ॥

3. धर्म का है राजपथ इस पे चले चलो,
संकट को आफतों को हरदम दले चलो,
चलके स्वयं सबको चलना सिखा गए ॥

4. आग से जो खेलेगा वही जल जाएगा,
शान्ति वो पाएगा जो शान्ति पहुंचाएगा,
सीधी सी बात सबके मन में बैठा गए ॥

5. जो कुछ किया प्रभु वीर ने उपकार है,
भूल नहीं सकता कभी-भी संसार है,
सूखी धरा पे ज्ञान गंगा बहा गए ॥

तर्जः–तेरे प्यार का आसरा चाहता हूँ

चलो गुनगुनाएँ महावीर गाथा,
झुकाएँ विनय से प्रभु जी को माथा ॥ टेक॥

1. नहीं कष्ट माँ को हो मेरी वजह से,
तरंगे ये निकली गर्भ की ही तह से,
माता पिता की सेवा की हर तरह से,
धन्य हुए पुत्र को पा पिता और माता ॥

2. सहोदर को आदर दिया था जनक सा,
दो साल तक टाली कहने से दीक्षा,
भ्रातृ प्रेम का ऐसा नायाब नक्शा,
नहीं देखने में कहीं और आता ॥

3. न नारी को नीचा अपने से माना,
न वासना में फंसकर गुलामी को ठाना,
परस्पर सहयोगी हैं या हैं स्वतन्त्र दोनों,
दृष्टिकोण प्रभुजी का विश्व को सुहाता ॥

4. पुत्र या हो पुत्री दोनों बराबर,
पाया प्रियदर्शना ने वात्सल्य सागर,
करी साधना उसने चरणों में रहकर,
जैन इतिहास जिसका गुणगान गाता ॥

5. संघ के नियन्ता थे संघ से ऊपर,
बनाते गुरु नहीं कभी तीर्थंकर,
शिष्यों को राग से रखते बचाकर,
भक्त भगवान् का हो रागहीन नाता ॥

तीसरा प्रवचन

भजनः–

तर्ज – दुनिया में ऐसा कहाँ सबका नसीब है

चले महावीर उग्र साधना के पथ पर,
सहे दुख, देखा नहीं सुख कभी मुड़कर ॥ टेक ॥

1. पहले ही दिन सही रस्सियों की मार थी,
   सहनशीलता प्रभु की देखो अपार थी,
   मुस्कराते ही रहे क्षमाशील मुनिवर ॥

2. आए अस्थिग्राम शूलपाणि के भवन में,
   घोर उपसर्ग आए डरे नहीं मन में,
   देख समता वो बना चरणों का अनुचर ॥

3. संगम ने 6 महीने जोर था लगा लिया,
   ध्यान में अचल मन को प्रभु ने बना लिया,
   हो गया निराश हारा नर से वो निर्जर ॥

4. पालियों ने पैरों तले आग जलाई थी,
   दयाहीन हो के खीर उस पे चढाई थी,
   बहता ही रहा तो भी शान्ति का निर्झर ॥

5. कानों में कीले ठुके सहा अति कष्ट था,
   वीतरागता थी पाई, द्वेष किया नष्ट था,
   आत्म लक्ष्य पाया प्रभु बने धर्म दिनकर ॥

चरम तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर तथा अपने गुरुदेवों को वन्दना तथा भाई बहनों को जय जिनेन्द्र।

पर्यूषण पर्व चल रहे हैं। एक अद्‌भुत आनन्द हर ओर बरस रहा है। आत्मा शुभ अध्यवसायों में बढ़ी जा रही है। त्याग तप और स्वाध्याय की त्रिपथगा गंगा में हम सब स्नान कर रहे हैं। जिनवाणी माता का दूध पी हम अपने बलवीर्य की वृद्धि कर रहे हैं। प्रातः अन्तगड़, दोपहर में कल्पसूत्र– कितनी सुन्दर व्यवस्था बनाई है हमारे गुरु भगवन्तों ने। भाग्यशाली हैं आप सब व साधुवाद के पात्र हैं जो गुरुदेवों की परम्परा में ढलते हुए हर कार्यक्रम में शरीक हो रहे हैं। हमें एक-एक पल को सार्थक करना है।

जाता क्षण-2 बहता कण-2 जो सफल नहीं कर पाएगा।
जीवन की नदिया सूख गई तो रोएगा पछताएगा ॥

इस कीमती समय का सदुपयोग यही है कि हम वीतराग देव प्रभु महावीर की जीवनी सुनें और शिक्षा ग्रहण करें।

काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्रया कलहेन च ॥

जो बुद्धिमान व्यक्ति काव्य या शास्त्रों को सुनकर अपना समय सार्थक नहीं बनाते फिर वे व्यसनों में, नींद में, या झगड़ों में ही अपना वक्त गंवाते हैं तथा मूर्ख कहलाते हैं।

आओ अपने पुण्य यश तथा गुणों की वृद्धि करते हुए प्रभु महावीर के जीवन चरित्र की झलकियाँ कल्पसूत्र के माध्यम से ग्रहण करें। अब तक हमने जाना कि प्रभु महावीर घर में रहकर दीक्षा की तैयारी में जुट गए थे। अपने ज्ञात वंश के वे चन्द्रमा थे। विनय और बड़ों के अनुकूल चलने की उनमें जबरदस्त लियाकत थी। माता पिता के देवलोक गमन के बाद घर के बड़ों ने रोका तो तुरन्त मान गए। उनकी नम्रता, साधना, निर्लेपता तथा निर्मोहता को देखकर बड़ों ने विशेषतः नन्दीवर्धन ने उन्हें पूर्ण अनुमति दे दी। और तभी पांचवें देवलोक के पर्यन्त भाग में रहने वाले लोकान्तिक देवों ने एक शाश्वत परम्परा का

निर्वाह करते हुए उनसे निवेदन किया– हे लोकनाथ भगवन् जागो, धर्मतीर्थ का ऐसा प्रवर्तन करो जिससे लोक के सर्व जीवों का हित, सुख और कल्याण हो। भगवान् अवधिज्ञान के धारक थे, उन्होंने अपने निष्क्रमण (दीक्षा) का उचित काल जाना और वर्षीदान देना प्रारम्भ कर दिया। दिन के प्रथम प्रहर में एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण मुद्राएँ वे दीन निर्धनों को देते थे। एक वर्ष में 3 अरब 88 करोड़ 80 लाख का महान् दान प्रभु ने दीक्षा से पूर्व दिया। फिर समग्र राज्य, वैभव व परिवार की ममता का त्याग कर हेमन्त ऋतु में मार्गशीर्ष बदी दसवीं के दिन उनकी दीक्षा का मंगल महोत्सव सम्पन्न हुआ। देवताओं ने चन्द्रप्रभा पालकी में प्रभु को आसीन कराया। भाई नंदीवर्धन सहित सकल परिवार उनकी शोभा यात्रा में सम्मिलित हुआ, सब ओर जय जयकार हो रही थी। सब एक ही भावना भा रहे थे कि आप ज्ञान दर्शन चरित्र से अपनी इन्द्रियों को जीतो, सिद्धि में पधारो, तप से राग द्वेष को नष्ट करो। अपनी आराधना के झण्डे को बुलन्द करो।

हजारों लोगों की शुभकामनाओं को ग्रहण करते हुए भगवान् महावीर की पालकी कुण्डपुर के बाहर ज्ञातृखण्ड उद्यान में पहुंची और अशोक वृक्ष के नीचे आकर ठहर गई। उस समय प्रभु का निर्जल चौविहार बेला था, उन्होंने पंचमुष्ठि लोच किया, देवदूष्य ग्रहण किया और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के समय अणगार धर्म को स्वीकार कर लिया। वे अकेले ही संयम के मार्ग पर आरुढ हुए। नन्दीवर्धन तथा समस्त परिवार तो वापिस लौट आया पर भगवान् महावीर चरित्र के साथ-2 तप की ओर अग्रसर हो गए। वही भजन की कड़ियाँ दोहराएंगे–

तर्जः– मेरा छोटा-सा संसार

गाना है वीर गुणगान, पाना है धर्म वरदान,
था जीवन चरित्र महान्, सुनने से हो कल्याण ॥टेक॥

नन्दीवर्धन से आज्ञा ले, इक वर्ष निर्धनों को धन दे,
किया संयम में उत्थान ॥

कल्पसूत्र में 12½ साल के दौरान भगवान् कहाँ-2 विचरे, किस-2 घटनाचक्र से गुजरे, किन-2 पात्रों के सम्पर्क में आए आदि उल्लेख नहीं है पर हमारे प्रसंग के अनुकूल होने से कुछ घटनाओं का उल्लेख करना आश्वयक है। श्री आचारांग सूत्र-प्रथम श्रुतस्कन्ध के नवें अध्ययन में भगवान् महावीर की साधना का बड़ा रोचक और स्वाभाविक चित्रण है, वहाँ उल्लेख है कि भगवान् बस्ती के बीच इसलिए नहीं ठहरते थे क्योंकि पुरुषों नारियों का सम्पर्क बढ़ता था। वे सर्दी में भी छाया में खड़े हो जाते थे। सर सर करती तेज ठण्डी हवाओं में भी वे हाथ पसारकर चलते थे, उनका अधिकांश समय ध्यान में व्यतीत होता था। उनकी ध्यानावस्था में आँखों की पुतलियाँ कई बार इस तरह बाहर की ओर आ जाती थी कि बच्चे डर जाते थे। कोई उनसे वार्तालाप करता तो वे चुप हो जाते थे तथा कई बार कुछ लोगों के कोप-भाजन भी बन जाते थे। अनार्य देश में अधम क्रूर अधार्मिक लोगों ने उनके पीछे कुत्ते छोड़ दिए पर प्रभु ने किसी के प्रति क्रोध नहीं किया। लगता है भगवान् ने कष्टों को अपना मित्र मान लिया था। उनकी आत्मनिर्भरता की व्याख्या तो पहले दिन की घटना से ही हो जाती है। दिन के अन्तिम प्रहर में ही प्रभु महावीर ने ज्ञातृखण्ड उद्यान से विहार कर दिया, कुर्मार ग्राम के बाहर ठहरे हुए थे, एक ग्वाले ने कहा— महात्मा जी, मेरे बैलों की संभाल करना, मैं कुछ देर में आऊंगा। ध्यानस्थ महावीर को कुछ नहीं पता कि क्या हो रहा है, बैल गुम हो गए, ग्वाला आया, बैल नहीं मिले ग्वाले को। महावीर प्रभु पर गुस्सा आया। उन्हें मारने दौड़ा तो इन्द्र ने रोका। तब इन्द्र ने कहा— प्रभु! 12½ साल तक आप पर कष्ट आएंगे, मुझे आपकी सेवा में रहने की इजाजत दे दो। प्रभु महावीर ने फरमाया— हे इन्द्र! अरिहन्त तीर्थंकर अपनी शक्ति से ही सिद्धि प्राप्त करते हैं।

अन्य किसी की करूं प्रतीक्षा मेरा ये प्रयास वृथा है।
स्वयं स्वयंभू होकर करनी अन्य किसी की आस वृथा है ॥

महावीर का नारा थाः 'एकला चलो रे'।

तर्जः– मेरा छोटा-सा संसार

गाना है वीर गुणगान पाना है धर्म वरदान,
था जीवन चरित्र महान्, सुनने से हो कल्याण ॥टेक॥

पहले दिन कष्ट कठिन आया, देवेश को प्रभु ने फरमाया,
मैं जीतूंगा मैदान ॥

एक दिन भगवान् दुइज्जन्तक नामक तपस्वियों के आश्रम में पहुंचे। वहाँ का अधिपति राजा सिद्धार्थ का मित्र था। भगवान् को देख बड़ा खुश हुआ। कहने लगा कि इस साल चातुर्मास काल मेरे आश्रम में व्यतीत करना। यहाँ एकान्त शान्त वातावरण है। भगवान् को ये प्रस्ताव ठीक लगा। वे चातुर्मास से पूर्व वहीं आ गए। कुलपति ने एक सूखे घास की कुटिया में उन्हें रहने की अनुमति दे दी। प्रभु ध्यानस्थ रहने लगे। कुछ पशु उस झोंपड़ी की सूखी घास चरने लगे, वह कुछ अस्त व्यस्त हो गई। कुलपति के शिष्यों ने अपने गुरु से कहा। उन्होंने प्रभु से निवेदन किया कि जरा झोंपड़ी की सुरक्षा का ध्यान रखा करें। ऐसी बात दोबारा हुई तो भगवान् को वहाँ पर ठहरना ठीक नहीं लगा। वहाँ से विहार कर दिया और 5 बातें मन में सोच ली– 1 ऐसी जगह नहीं ठहरूंगा जिससे किसी को बुरा लगे। 2 अधिकतर समय ध्यान में बिताऊंगा। 3 मौन रखूगां। 4 हाथ में भोजन करूंगा। 5 गृहस्थ काल के सम्बन्धियों की विनय नहीं करूंगा अर्थात् रिश्तों के चक्कर में नहीं आऊंगा। चातुर्मास में ही 15 दिन बाद भगवान् अस्थिग्राम के बाहर शूलपाणि के मन्दिर में आकर ठहर गए। यक्ष ने रात को उन्हें बहुत कष्ट-पीड़ा दी पर अन्ततः वह उनकी साधना से इतना प्रभावित हुआ कि उनका भक्त ही बन गया।

तर्जः– मेरा छोटा-सा-संसार

गाना है वीर गुणगान पाना है धर्म वरदान,
था जीवन चरित्र महान् सुनने से हो कल्याण ॥टेक॥

दुइज्जन्तक तापस खिन्न हुए, प्रभु तत्क्षण उठकर चले गए,
नहीं हो कोई परेशान ॥

फिर शूलपणि ने कष्ट दिया, किया प्रभु ने उसका साफ हिया,
बढ़ी सौम्य मृदु मुस्कान ॥

एक बार दक्षिण वाचाला नगरी से उत्तर वाचाला नगरी जाते हुए प्रभु कनखल आश्रम से निकले। मार्ग में चण्डकौशिक सांप था। उसे प्रभु ने अपनी करुणा का अमृत पिलाया और जन्म-2 के क्रोध का मारा चण्डकौशिक प्रतिबुद्ध हुआ।

प्रभु महावीर की धर्म साधना अकेलेपन की साधना थी, वे नहीं चाहते थे कि जब तक केवल ज्ञान हो तब तक किसी व्यक्ति विशेष को निकट रखूं या उसकी ओर ध्यान दूं, फिर भी ऐसा संयोग बना कि एक अनचाहा व्यक्ति भगवान् के जीवन में प्रवेश कर गया। उसका नाम था गौशालक। जब प्रभु का दूसरा वर्षावास नालन्दा के बाहर किसी जुलाहे की workshop पर चल रहा था तब मंखलीपुत्र गौशालक का भी वहाँ आगमन हो गया। उसने कई बार भगवान् के पारणे में पांच दिव्य प्रकट होते देखे और वह उनका शिष्य बनने के लिए तैयार हो गया। प्रभु से प्रार्थना की तो प्रभु मौन हो गए। मगर चौमास के बाद उसने अपने वस्त्र भी त्याग दिए, सिर भी मुंडवा लिया और आग्रह करने लगा कि मैं तो आपका ही शिष्य हूँ। आपके ही चरणों में रहूँगा तब प्रभु ने फरमाया– जैसी तेरी इच्छा। कई ऐसी घटनाएँ घटती चली गई जिनके कारण उसके मन में यह सिद्धान्त बन गया कि जो कुछ संसार में होता है वह नियत और fixed है, पहले से ही तय है। उसकी आग्रह-वृत्ति और चंचलता के कारण भगवान् को भी काफी संकटों का सामना करना पड़ा।

भगवान् की तपस्या अबाध गति से चल रही थी, कुछ लोग उन्हें जानने भी लगे थे अतः जब कहीं से प्रभु पर कष्ट आते तो कहीं ना कहीं से कोई परिचित व्यक्ति आकर प्रभु को कष्टों से बचा लेता। जब भगवान् उस कष्ट की पराकाष्ठा के लिए अपनी क्षमता, सहन शीलता को तैयार कर रहे होते थे तभी उन्हें कहीं से राहत मिल जाती और प्रभु का वह प्रयोग अधूरा रह जाता। वे चाहते थे कि मैं सहिष्णुता के चरम शिखर को चूमकर अधिकतम निर्जरा कर लूं तथा आत्म-सहिष्णुता के आखरी छोर तक पहुंच जाऊं, उस समय मिलने वाली राहत से प्रभु प्रसन्न होने के बजाय उसे अन्तराय रूप मानते थे। अपनी क्षमताओं की धार को तराशने के लिए प्रभु ने एक अनूठा प्रयोग करने की सोची— ऐसे इलाके में जाऊं जहाँ मुझे कोई जानता ही न हो, मुझे व्यक्तिगत रूप से तो क्या सामान्य साधु सन्यासी के प्रति भी जहाँ कोई परिचित न हो। जहाँ सुरक्षा की सूक्ष्मतम संभावना भी न हो। वह इलाका था अनार्य प्रदेश का। वज्रभूमि और शुभ्रभूमि वहाँ के दो प्रसिद्ध भू-भाग थे, उस क्षेत्र में वैसे तो सन्त महात्मा कम ही जाते थे यदि कोई जाते भी थे हाथों में ऊंचे-2 डण्डे लेकर चलते थे ताकि अनार्य मनुष्य तथा हिंसक जानवरों को दूर से ही डराया जा सके। परन्तु भगवान् महावीर तो इसके विपरीत सबके आक्रमण झेलने का संकल्प लेकर उधर गए, तब तक वस्त्र का भी वे पूर्ण त्याग कर चुके थे, बहुत से गाँवों के लोग उन्हें अन्दर नहीं घुसने देते थे, कोई उन पर ध्यानस्थ अवस्था में पत्थर, दण्ड तथा धूल फेंकते थे, आगमों की साक्षी है कि उस प्रयोग में भगवान् को पूर्ण सफलता मिली, वे आत्म परीक्षा में कुन्दन बनकर निखरे, उनकी कर्म निर्जरा इतनी अधिक हुई जितनी कि कुछ गिने चुने प्रसंगों पर ही हुई होगी।

पावक की लपटों में पड़कर सोना कुन्दन बन जाता है,
भाव शुद्ध हो नन्हा धागा रक्षा बन्धन बन जाता है ॥
संघर्षों की भट्टी में तप जाना छोटी बात नहीं है,
त्याग तपस्या से मानव माथे का चन्दन बन जाता है ॥

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भगवान् महावीर की साधना में जहाँ तपस्या के लिए विशेष स्थान था, वहीं संयम और ध्यान भी उनकी तपस्या के प्रमुख अंग थे। वे अपने प्रत्येक क्रिया-कलाप में बहुत यतना, सावधानी एवं जागरूकता रखते थे। त्रस स्थावर सभी जीवों की रक्षा का उन्हें भाव रहता था। जब आहार को जाते थे तो मार्ग में पशु पक्षी बैठे होते तो उन्हें लाघंते नहीं थे यही सोचकर कि कहीं मेरे कारण से उठ न जाएँ, उड़ न जाएँ, इनको भोजन करने में बाधा न आए।

प्रभु महावीर ध्यान का गहनतम अभ्यास करते थे। शरीर के स्तर से हटकर आत्मा के स्तर पर जीने की कला वे जानते थे। बाहरी परिवेश में होने वाले घटनाक्रम का उन्हें भान भी नहीं रहता था। किसी के द्वारा दी गई पीड़ाओं का भी कई बार उन्हें पता नहीं लगता था क्योंकि वे उस समय आत्मा के स्वाभाविक सुख में निमग्न होते थे, बाह्य पीड़ाएँ उन्हें अनुभूत ही नहीं होती थी। भगवान् महावीर ने तप के रूप में जो भी अनुष्ठान किया वह केवल देहशोषण नहीं था। वह इन्द्रियों के प्राचीन सुखाभ्यास को भंग करना था। वह चरित्र की परिपक्वता के लिए किया गया योग था। वह शरीर ऊर्जा का अल्पतम व्यय करते हुए आत्म-ऊर्जा का आविर्भाव था। वह ध्यान की पूर्णता से उत्पन्न शरीर-निरपेक्षता का प्रतिबिम्ब था। यों समझें कि ज्ञान, दर्शन, चरित्र के पश्चात्, मुक्ति के लिए आवश्यकतम कठोरता का पालन तप है, ऐसा मानकर प्रभु महावीर चले थे और क्षमाधर्म को ऊंचे सोपानों तक ले गए थे।

देह से थे मानव गुणों से भगवान् थे, वर्धमान प्रभु महावीर।
त्याग और तपस्या में सर्वतो महान् थे, वर्धमान प्रभु महावीर ॥

अनार्य देश से एक बार मगध में पधार कर प्रभु फिर दोबारा अनार्य देश में गए और कर्मों की गहन निर्जरा की। गौशालक भी प्रभु महावीर के साथ ही रहा, चंचलता के कारण कई बार कष्ट भी पाता

था और महावीर स्वामी को भी दिलाता था। छः वर्ष साथ रहने के पश्चात अन्ततः वह महावीर भगवान् से जुदा हो गया।

भजनः–

तर्जः– मेरा छोटा सा संसार,

गाना है वीर गुणगान, पाना है धर्म वरदान,
था जीवन चरित्र महान् सुनने से हो कल्याण ॥टेक॥

आए उपसर्ग भयकंर थे, प्रभु शान्ति क्षमा के सागर थे,
रहे अचल अटल हिमवान् ॥

गौशालक पहले शिष्य बना, फिर उच्छृंखलता पर उतरा,
किया गुरुवर को हैरान ॥

भगवान् की तपः साधना के कुछ प्रसंग जैन इतिहास में मील के पत्थर की तरह दूर-2 तक दिखाई देते हैं, उनमें से संगम देव का प्रसंग अपना प्रमुख स्थान रखता है। प्रभु की क्षमाभावना प्रकर्ष की ओर बढ़ रही थी, वे दृढभूमि की ओर प्रस्थान रत थे, पेढाल गांव के बाहर उद्यान में एक अचित्त पुद्गल पर अपनी दृष्टि टिकाए ध्यानस्थ खड़े थे, तेला तप था, प्रथम देवलोक में उनके तप की चर्चा प्रारम्भ हो गई। इन्द्र ने प्रमोद भावना से भावित होकर कहना प्रारम्भ किया कि प्रभु महावीर का धैर्य, ध्यान तथा साहस इतना दृढ अविचल तथा अकम्प है कि देव, दानव, मानव कोई भी उन्हें हिला नहीं सकता। समग्र सभा ने उनके वक्तव्य का अनुमोदन किया पर वहीं बैठे एक संगम नामक देव को ये बात नहीं जंची, उसने इन्द्र की बात मिथ्या करने की ठानी। वह तत्काल महावीर के सान्निध्य में आया। एक ही रात में उसने अनुकूल तथा प्रतिकूल 20 भीषणतम उपसर्ग प्रभु महावीर को दिए पर प्रभु का चित्त पूर्ववत् पूर्णतः शान्त और प्रसन्न रहा। संगम ने फिर भी हार नहीं मानी। जब प्रभु ने अगले दिन विहार किया उसने

हर जगह उनके आहार में अन्तराय डाली, जगह-2 पर प्रभु को चोर साबित करके पकड़वाया। तोसलि ग्राम के बाहर ध्यानस्थ प्रभु के पास उसने शस्त्रास्त्र एकत्रित कर दिए और उन्हें राजद्रोही की तरह फंसाने की घृणित चेष्टा की, उनको फांसी की सजा दिलाई पर तीर्थंकर प्रभु के गले में पड़ा फंदा एक बार नहीं, 7 बार बेकार हुआ।

उसका तो एकमात्र लक्ष्य ही था कि किसी तरह भगवान् महावीर झुझंला उठें, किसी पर क्रोध करें, किसी के आगे दलील दें, अपील करें या संयम के प्रति उदासीन हो जाएँ और तप, ध्यान छोड़ दें। परन्तु भगवान् को उन बाहरी कष्टों की क्या परवाह थी। उन्हें तो आत्म-आनन्द का वो अमृत प्राप्त हो चुका था जिसे पान करके वे सकल शारीरिक कष्टों को भूल चुके थे। शरीर की आवश्यकताओं को समझते हुए भी उन्होंने उनकी अधीनता में जीना बन्द कर दिया था। वे सकंल्प के धनी तो थे ही पर परम सुखों के भोगी भी थे। उनका ध्येय स्पष्ट था। उनकी भावना निर्मल थी। उनकी आत्मा बली थी अतः विचलित होने का कहीं प्रश्न ही नहीं था। वे तो यही मानकर चले थे कि इन सब उपसर्गों से मेरी कर्म निर्जरा हो रही है, उनका नारा था—

खूब जी भरके सता मुझको सताने वाले,
तुझको हसरत न रहे ओ तू जुल्म को ढाने वाले ॥

उनका जाहो जलाल घटने के बजाए और ज्यादा बढ़ रहा था, वे तो मृत्यु का आलिंगन करने के लिए भी तैयार थे।

1. **जो मौत से हँसकर के खेले इतिहास को उनका ख्याल रहा,**
   जो बन के भगौड़े जा बैठे कब उनका जिक्रे अहवाल रहा।
   रही आग धधकती थी जब तक सोना भी धधकता जाता था,
   कुछ आग से निकले देरी हुई न वो गर्म रहा न वो लाल रहा ॥

2. **मेरा दावा है कि होगी रोशनी पहले से तेज,**
   तू बुझा के शमा मेरा दिल जलाकर देख ले।

एक सिसकी भी न निकलेगी मेरे दिल से कभी,
तुझपे जितने भी हैं कांटे सब चुभाकर देख ले ॥

3. इश्क ने हमको जियारतगारे-आलम कर दिया,
गर्दे गम से हो गया तामीर काबा एक और ॥

छः महीने के अनवरत संघर्षों के बावजूद भगवान् की तितिक्षा में कमी नहीं आई, खूब भूख-प्यास झेली, पीड़ा अपमान के दौर से गुजरे, अकेले में, बाजारों में, चौराहों पर, रसोई में, राजदरबारों में, श्मशानों में प्रभु को संगम ने झुंझलाने की कोशिश की पर उसकी योजना सफल नहीं हो सकी, अन्ततः निराश हताश संगम सोचने लगा कि इनको डिगाने के प्रयास में मैंने अपने स्वर्ग के सुख चैन को भी छोड़ दिया पर ये तो पहले से भी अधिक दृढ हुए हैं। उसका मुंह फीका पड़ गया। प्रभु चरणों में आया, कहने लगा— प्रभो! इन्द्र महाराज ने आपके सम्बन्ध में जो कहा वह अक्षरशः सत्य है, मैं हत-प्रतिज्ञ हूँ, आप सत्य प्रतिज्ञ हैं। अब मैं जा रहा हूँ आप निर्विघ्न होकर अपनी साधना कीजिए। मैं और किसी को भी नहीं आने दूंगा। प्रभु फरमाने लगे— मुझे किसी आश्वासन की भी अपेक्षा नहीं है। मेरी तपस्या किसी के होने न होने से जुड़ी हुई नहीं है। जाते-2 संगम ने देखा कि प्रभु की आँखों में गीलापन है, उनकी भीगी पलकों को देख संगम सहम गया। 6 महीने निरन्तर पीड़ाओं के दौर से गुजरते हुए जिस वज्र पुरुष की आँखें नम नहीं हुई। आज क्या कारण है कि प्रभु की आँखें डबडबा आई? उसने पूछ ही लिया— प्रभो! आपके नयनों में आँसुओं की बूंदे क्यों है? आज आपको क्या कष्ट और दुख आ पड़ा? प्रभु फरमाने लगे— संगम! तेरे कारण मेरे कर्म कट गए मगर मेरे कारण तेरे कर्म बन्ध गए, जब इन कर्मों का उदय आएगा तुझे कितनी पीड़ा से गुजरना पड़ेगा, मुझे तो तेरे उस वक्त के दर्द की स्मृति हो उठी है और इसीलिए मेरी आँखें भर आई हैं। मैं नहीं चाहता कोई भी प्राणी कष्ट पाए पर यहाँ तो मेरे कारण तू कष्ट पाएगा। मुझे यही दुख साल रहा है, **'धन्य है प्रभु की करुणा'**।

आचार्य हेमचन्द्र जी ने प्रभु महावीर की स्तुति करते हुए लिखा है:–

कृतापराधेऽपि जने कृपामन्थर तारयोः ।
ईषद् वाष्पार्द्रयो र्भद्रं श्री वीर जिन नेत्रयोः ॥

घोर अपराधी पर भी जिनके नयनों की पुतलियों में कृपा और करुणा भरी थी तथा आँसुओं से जो कुछ गीली हो गई थी, ऐसे प्रभु की दो आँखें ही हमारा और विश्व का भला कर सकती हैं।

जैन कवि धनपाल ने एक श्लोक में बड़ी अनूठी बात कही है कि प्रभु महावीर का क्रोध उनसे नाराज होकर उनके पास से भाग गया, जब उसने देखा कि इनके पास बल तो इतना है कि पूरे संसार को आबाद या बर्बाद कर दें पर इस दुष्ट संगम को फिर भी ये क्षमा कर रहे हैं, इनके पास रहने से क्या फायदा?

बलं जगद् रक्षण ध्वसन क्षमं क्षमा च सा संगमके कृतागसि ।
इतीव संचिन्त्य विमुच्य मानसं रूषेव रोषस्तव नाथ विनिर्ययौ॥

भजनः–

तर्जः– मेरा छोटा-सा संसार

गाना है वीर गुणगान, पाना है धर्म वरदान,
था जीवन चरित्र महान् सुनने से हो कल्याण ॥टेक॥

संगम ने खूब परीक्षा ली, प्रभु की घनघोर तितिक्षा थी,
दिल था कारुण्य प्रधान ॥

6 माह की उत्कृष्ट तपस्या का पारणा प्रभु ने व्रज गांव की वृद्धा के घर खीर से किया। प्रभु का वैशाली में चातुर्मास था, वहाँ एक भावुक श्रावक-जिनदत्त था, पहले धनवान होता था परन्तु अब गरीबी में दिन बिता रहा था, आम जनता उसे जीर्ण ही कहने लगी पर भावनाओं का धनी था, उसे पता चला कि भगवान् उद्यान में तप कर

रहे हैं, वह प्रतिदिन उनके दर्शन करता और प्रार्थना करता– प्रभो, मेरे घर आहार-पानी को पधारना पर प्रभु तो चार महीने की तपस्या का प्रत्याख्यान कर चुके थे। उसने अपनी विनति नहीं छोड़ी, एक आस थी प्रभु आएँगे। चार महीने की तपस्या पूर्ण हो गई, प्रभु आहार के लिए चले, जीर्ण घर में बैठा-2 भावना भा रहा था कि प्रभु मेरे घर पधार जाएँ पर प्रभु तो किसी और घर चले गए। गृहस्वामी का नाम 'पूर्ण' था पर भावना अत्यन्त तुच्छ थी, अपनी दासी को कह दिया, इस महात्मा को कुछ बचा खुचा हो तो दे दो, उसने थोड़े से बाँकले प्रभु को दे दिए। चार महीने की तपस्या का पारणा प्रभु ने उन्हीं से कर लिया, 5 दिव्य प्रकट हुए, देवदुन्दुभि बजी। उधर जीर्ण को पता चला कि प्रभु का पारणा हो गया, धारणा है कि यदि 2 घड़ी और उसे प्रभु के पारणे का पता न लगता तो उसकी उच्च भावना के परिणाम स्वरूप उसको केवल ज्ञान प्रकट हो जाता।

भजनः–

तर्जः– मेरा छोटा-सा संसार

गाना है वीर गुणगान, पाना है धर्म वरदान,
था जीवन चरित्र महान् सुनने से हो कल्याण ॥

थे जीर्ण सेठ के भाव प्रबल, प्रभु पूर्ण के घर पर गए निकल,
लिया बासी अन्न और पान ॥

एक ऐसा भीषण उपसर्ग प्रभु वीर पर आते-2 टल गया जिसका उल्लेख करना आवश्यक है तथा प्रस्तुत प्रसंग से हमें वैदिक पुराणों में देव असुरों के संग्राम की स्मृति हो उठती है। घटनाचक्र इस तरह घूमा कि पूरण नामक एक बाल तपस्वी ने बेले-2 की तपस्या की। उसके पास 4 खानों वाला भिक्षापात्र था, एक डिब्बे का भोजन वह पथिकों को देता था, दूसरे का पक्षियों को, तीसरे का जलचरों को और चौथे डिब्बे के भोजन से अपना पारणा करता था। एक महीने का अनशन

करके वह असुर कुमार जाति के भवनपतियों में चमरचंचा राजधानी का इन्द्र चमरेन्द्र बना। पर उसे पहले देवलोक के इन्द्र शक्रेन्द्र का वैभव बर्दाश्त नहीं हुआ। उसे गद्दी से गिराने के उद्देश्य से देवलोक की ओर चला परन्तु अपनी शक्ति कम देखते हुए उसने महावीर प्रभु की शरण ग्रहण करना उचित समझा। उन दिनों भगवान् सुंसुमारपुर के पास एक उपवन में ध्यानस्थ खड़े थे, उन्हें वन्दना करके और ये कहकर कि मैं आपका आश्रय लेकर लड़ने जा रहा हूँ– वह पहले देवलोक में पहुंचा। बड़ा भयंकर उपद्रव किया, शक्रेन्द्र का अपमान तक करने लगा। उल्टा सीधा प्रलाप करने लगा। शक्रेन्द्र को उसकी धृष्टता पर क्रोध आ गया और उसकी तरफ अपना अचूक शस्त्र वज्र फेंक दिया। चमरेन्द्र अपनी जान बचाकर नीचे की ओर भागा, कहीं भी जाता उसकी खैर नहीं थी अतः सीधा भगवान् के पास आ गया। अपना छोटा सा रूप बनाकर भगवान् के दोनों पैरों के मध्य बैठ गया। बाद में शक्रेन्द्र को ध्यान आया कि उस बेचारे चमरेन्द्र की इतनी हैसियत ही कहाँ है जो यहाँ आ भी जाता। जरूर किसी महापुरुष की शरण लेकर आया होगा। अवधिज्ञान से सारी स्थिति जानी और देखा कि वज्र भगवान् महावीर की तरफ बढ़ रहा है, इन्द्र ने तीव्र गति से जाकर वज्र पकड़ लिया, वह वज्र भगवान् के शरीर को तो छूने से बच गया पर उसके वेग से भगवान् के सिर के बाल जरूर खड़े हो गए। इतने से कष्ट के लिए भी शक्रेन्द्र ने प्रभु से क्षमा-याचना की तथा चमरेन्द्र को अभय दान देते हुए माफ कर दिया। चमरेन्द्र ने भी प्रभु से क्षमा-याचना करी, यह रोचक प्रसंग भगवती-सूत्र में विस्तार पूर्वक वर्णित है।

भजनः–

तर्जः– मेरा छोटा सा संसार

गाना है वीर गुणगान, पाना है धर्म वरदान,
था जीवन चरित्र महान् सुनने से हो कल्याण ॥टेक॥

चमरेन्द्र भिड़ा शक्रेन्द्र से, फिर माफी माँगी जिनेन्द्र से,
माना गहरा अहसान ॥

चन्दना के कष्ट मिटे सारे, प्रभु ने अभिग्रह तेरह धारे,
है कौन भला अनजान ॥

भगवान् महावीर से गहराई से जुड़ी चन्दनबाला महासती की जीवनी का उल्लेख भी आज पेश करना जरूरी है। चम्पा के राजा दधिवाहन और महारानी धारिणी की बेटी चन्दना सचमुच शील-सुगन्ध में चन्दन से भी ज्यादा सुरभित थी। कौशाम्बी नरेश शतानीक से दधिवाहन का छोटा-मोटा संघर्ष चलता रहता था। एक युद्ध में शतानीक की सेना ने चम्पा पर कब्जा कर लिया और लूटपाट मचा दी, उस लूटपाट में धारिणी और चन्दना को एक रथवान उठाकर ले आया। अपने शील को खतरे में देख धारिणी ने अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली, परन्तु रथिक ने चन्दनबाला को मरने से रोक लिया, उसे बाजार में दासी की तरह बेच दिया, धनावह नामक एक सेठ ने उसे खरीद लिया, परन्तु सेठ की पत्नी मूला चन्दनबाला से ईर्ष्या रखने लगी। उन दिनों भगवान् महावीर का अभिग्रह चल रहा था कि मैं संसार की सर्वाधिक शोषित नारी से आहार लूंगा। उनकी धारणा थी कि कोई राजकन्या दासी के रूप में जी रही हो, हाथ-पैर भी बंधनों में हों, सिर का सौन्दर्य केश-राशि तक गंवा चुकी हो, 3 दिन से भूखी प्यासी होकर भी छाज में उड़द के बाँकले लिए दोपहर बाद दान देने की भावना रखती हो, देहली के बाहर अन्दर एक-एक पैर हो, हँसती भी हो और रोती भी हो। प्रभु के अन्तर्मानस पर संभवतः यही भाव होगा कि सेठ साहुकारों के घरों से तो कोई भी आहार ले सकता है पर ऐसी उपेक्षिता नारी की कौन सुध लेता है, अतः उन्होंने ऐसा संकल्प ठाना। उधर धनावह सेठ के घर क्लेश रहने लगा। चन्दना कर्मों का फल मान चुपचाप झेल रही थी। सेठ को 3 दिन के लिए

बाहर जाना पड़ा तब मूला ने चन्दना पर बड़ी भीषण ज्यादती की। उसके मुख्य-2 कपड़े उतरवा लिए, बाल मुंडवा दिए, हाथ पैर जकड़ दिए, तहखाने में बन्द कर दी और पीहर चली गई। तीन दिन बाद सेठ आया और अपनी लाड़ली बेटी चन्दना को देखा, उसको खाने वास्ते बांकुले दिए, उसकी जंजीर तुड़वाने के लिए लौहार को बुलाने गया। इसी बीच में 5 महीने 25 दिन की तपस्या के बाद प्रभु का चन्दना के द्वार पर पधारना हुआ। चन्दना प्रभु को देख भाव विभोर हो गई परन्तु भगवान् ने आँसुओं की कमी देखी तो वापिस मुड़ गए फिर चन्दना रो पड़ी, भगवान् का अभिग्रह पूरा हुआ और उसके हाथ से उड़द बाँकले लेकर अपना पारणा किया तथा चन्दना का उद्धार किया। स्वर्ण सिंहासन पर बैठी चन्दना के सारे कष्ट मिट गए। धन्य है प्रभु, धन्य है चन्दना।

भगवान् ने जितने भी उपसर्ग झेले उनकी संख्या गिनना तो संभव नहीं पर एक परीषह तो ऐसा आया था जिसको याद करके रौंगटे खड़े हो जाते हैं। उस जघन्य कार्य का कर्त्ता कितनी नीचता कर सकता है तथा उसको सहने वाला कितना ऊंचा हो सकता है, यह हम जैसे मानवों के लिए कल्पना का भी विषय नहीं है। वह घटना है कानों में कीले ठोकने की। प्रभु छम्माणि गांव में ध्यान लगाए खड़े थे, सायंकाल के समय एक ग्वाला आया, क्या संयोग था, दीक्षा के पहले दिन भी ग्वाला और आज भी ग्वाला, कह गया— बैलों को संभाल लेना, मानो भगवान् ने अपने महलों के हाथी उसके बैलों की देखभाल करने के लिए छोड़े हों। महावीर प्रभु अपने स्वरूप में लीन थे, बैल गुम हो गए, ग्वाला आया तो क्रुद्ध हो गया। ऊपर का कारण तो बड़ा मामूली सा था पर भीतर तो जन्म जन्मों की वैर भावना दबी पड़ी थी, आज अचानक भड़क उठी। त्रिपृष्ठ के भव में कान में सीसा डलवाने पर तड़प कर मरने वाला शय्यापालक आज ग्वाला बनकर बदला लेने पर उतारु हो गया। उसने वहाँ उगी तीखी ड़ाभ की सलाइयाँ ली और

दोनों कानों में आर-पार चुभो दी, कोई बाहर से तत्काल देख न ले इसलिए उन्हें बाहर से तोड़कर बराबर भी कर दी। भगवान् ने उस वेदना को भी समता से सहन किया। ये सोचकर कि मैं अपने कर्मों का ही भुगतान कर रहा हूँ।

एक दिन भगवान् मध्यम पावा में पधारे, सिद्धार्थ सेठ के घर बैठे खरक वैद्य ने उनकी मुखाकृति देखकर जान लिया कि इनके शरीर में कोई चीज चुभी हुई है। औषधि तथा औजार लेकर वह भगवान् के पीछे-2 उद्यान में आया, भगवान् ज्यों ही ध्यान में खड़े हुए, उस वैद्य ने कान में कुछ दवा-सी डाली और संडासी से सलाइयाँ खींचकर बाहर निकाली, उस समय प्रभु महावीर के मुख से भी चीत्कार निकल गई थी। रक्त की धाराओं को वैद्य ने दवाईयों से बन्द कर दिया और धीरे-2 घाव भर गया। यह सबसे भयंकर उपसर्ग था पर भगवान् तो समता मूर्ति थे। हमारे टीकाकारों ने आकलन किया है कि 23 तीर्थंकरों के कष्ट एक तरफ थे और प्रभु महावीर के कष्ट एक तरफ।

इस तरह कथा ग्रन्थों के आधार पर कुछ घटनाएँ आपके सामने प्रस्तुत की। अब पुनः कल्पसूत्र के मूल पाठ का आलम्बन लेकर आगे बढते हैं। लिखा है कि 12 साल से अधिक समय बीत गया। भगवान् पर देवता, मनुष्य तथा तिर्यञ्चों की ओर से अनुकूल और प्रतिकूल सभी तरह के परीषह आए लेकिन भगवान् ने उन्हें समता से सहन किया। भगवान् 5 समिति तथा 3 गुप्तियों के पालक रहे। कषायों के विजेता और सच्चे निर्ग्रन्थ बनकर जिए। कांस्यपात्र, शंख, जीव, गगन आदि 21 उपमाओं से अलंकृत करके भी आगमकार उन्हें अनुपमेय ही मानते हैं। द्रव्य क्षेत्र काल भाव चार प्रकार के प्रतिबन्धों तथा 18 पापों से सर्वथा मुक्त प्रभु का जीवन विश्व में अद्वितीय ही था। चातुर्मास के अलावा प्रभु गांव में एक रात तथा शहर में 5 रात से ज्यादा नहीं लगाते थे, ऐसी उनकी सामान्य व्यवस्था थी।

12 वर्ष तेरह पक्ष की अवधि में प्रभु ने 344 दिन आहार किया। शेष समय उन्होंने तपस्या में व्यतीत किया और वह भी निर्जल। उनकी तपस्या का वर्णन निम्न प्रकार से मिलता है:—

6 महीने का तप	एक बार
5 महीने व 25 दिन	एक बार
4 महीने का तप	9 बार
3 महीने का तप	2 बार
2½ महीने का तप	2 बार
2 महीने का तप	6 बार
1½ महीने का तप	2 बार
एक महीने का तप	12 बार
15 दिन का तप	72 बार
2 दिन की भद्र प्रतिमा	1 बार
4 दिन की महाभद्र प्रतिमा	1 बार
10 दिन की सर्वतो भद्र प्रतिमा	1 बार
बेला तप	229 बार
तेला तप	12 बार

भगवान् की जिन्दगी का कण-2 हमारे लिए ज्योति का पुञ्ज है। उनके मुकाबले में विश्व का कोई धर्म-गुरु नहीं टिक सकता। आजकल के वैज्ञानिक ये जानने के प्रयास में लगे हुए हैं कि किस प्रकार भगवान् महावीर दीर्घ तपस्या के बावजूद अपने शरीर और मन की ऊर्जा को सुरक्षित रख सके। यह विश्व मात्र के लिए एक चुनौती है। संसार के अन्य महापुरुषों ने यदि कभी तप की ओर कदम बढाए भी तो बीच में ही लड़खड़ा गए परन्तु भगवान् महावीर ही एक मात्र ऐसे विलक्षण मानव थे जो दीर्घ, कठिन एवं उग्र तपस्याओं के बावजूद अपने आपको

स्वस्थ एवं सक्षम बनाए रख सके। भगवान् का छद्मस्थ काल व्यतीत होने वाला था, एक रात भगवान् को नींद आई। श्री आचारांग सूत्र के अनुसार उन्हें जब नींद आती तो वे टहलने लग जाते थे पर उस रात भगवान् को नींद आ ही गई जिसमें उन्होंने 10 सपने देखें जिनका संकेत यही था कि भगवान् का लक्ष्य पूरा होने वाला है तथा संसार को अध्यात्म का एक महान् प्रवक्ता, तीर्थ-प्रवर्तक मिलने वाला है। आओ हम भी उस महान् प्रभु के तप की राहों पर चलकर आत्म कल्याण करें।

पर्यूषणों की मंगलमय घड़ियों में हमें अपने जीवन संशोधन की सामग्री बटोरनी है, सुन्दर अवसर है सभी लाभ उठाएँ, आपके धर्म स्नेह को हम साधुवाद देते हैं, आपका सहयोग पाकर हमारा उत्साह बढ़ रहा है। इसी तरह आगे भी आप हमें अपने प्रेम और सहयोग से कृतार्थ करते रहेगें, ऐसी आशा करते हैं। आपकी अन्तरात्मा में विराजमान सिद्धत्व को नमस्कार।

– जय जिनेन्द्र!

अन्य उपयोगी भजन

तर्जः– वीर जिनेन्द्र भगवान् जी तारो-2 स्वामी

महावीर वर्धमान जी भगवान् हमारे,
गाओ मंगल गान जी भगवान् हमारे ॥टेक॥

1. पूर्ण हुई सिद्धार्थ की आशा, त्रिशला देवी की अभिलाषा,
   पाकर पुत्र महान् जी ॥
2. शैशव की अनुपम लीलाएँ, स्पष्टतया हमको बतलाएँ,
   कैसे थे बलवान जी ॥
3. धीरे-2 बीता बचपन, आ पहुंचा फिर अभिनव यौवन,
   हो गया स्वर्ण विहान ॥

4. अनुभव की दृष्टि से सारी, दुनिया देखी खारी-2,
फीकी और सुनसान ॥

5. राज्य अखिल धन कंचन छोड़ा, क्षण में सब प्रिय परिजन छोड़ा,
छोड़ा सकल जहान ॥

6. अन्तर का तम दूर भगाया, संयम का नवदीप जलाया,
अविरल जाज्वल्यमान ॥

7. कितनी ही सम्प्रति आ जाएँ, दुनिया की प्रतिकूल हवाएँ,
आँधी और तूफान ॥

8. महाश्रमण वो हिल न सके थे, चलते-2 भी न थके थे,
अविचल मेरु समान ॥

9. अन्तिम साध हुई अब पूरी, दूर हुई मंजिल की दूरी,
पाया केवल ज्ञान ॥

10. दुनिया जब गुमराह बनी थी, जीवन उनका राह बनी थी,
करने को अभियान ॥

11. कितने अन्तर्दीप जले थे, कितने अन्धतमिस्र टले थे,
पाकर ज्योतिर्दान ॥

12. बदल गई अब भ्रान्त दिशा थी, बीत गई अब पाप निशा थी,
हो रहा नव निर्माण ॥

13. शान्त हुई जीवन की धारा, पा करके अनुरूप किनारा,
सिद्धि परिनिर्वाण ॥

14. हम भी अपना दीप जलाएँ, जीवन को उस ओर चलाएँ,
जिधर गए भगवान् ॥

भजनः–

तर्जः– ओ महानाथ सुण म्हारी बात

जय महावीर जय वर्धमान,
तेरे जीवन की झांकी में झांका तो ज्ञान पाया,
मन शान्त हुआ, वाणी पवित्र हुई, हुई सफल काया ॥टेक॥

1. क्षत्रिय थे पर रहे अहिसंक खेला नहीं शिकार,
घृणित था माना माँसाहार,
पार्श्व प्रभु के शासन का कुल धर्म था अपनाया ॥

2. जीवन में हुआ प्रवेश यशोदा का सौभाग्य जगा था,
पर मन में वैराग्य जगा था,
हुई एक पुत्री फिर शील धर्म से जीवन चमकाया ॥

3. सेवा से माता ने पिता ने शान्ति अति पाई,
अन्त में स्वर्ग गति पाई,
भाई नन्दीवर्धन ने दो वर्ष था ठहराया ॥

4. सचित्त त्याग पूर्वक भावित की द्वादश अनुप्रेक्षा,
हुई फिर संसारोपेक्षा,
वर्षीदान दिया दीनों को बाँटी धन माया ॥

5. दीक्षा लेकर सहे परीषह करी तपस्या घोर,
जिसे सुन होता हृदय विभोर,
द्वेषी पर भी विष के बदले अमृत बरसाया ॥

6. निष्कषाय निर्मोह हुए फिर केवल ज्ञान हुआ,
प्रकट निज में भगवान् हुआ,
सबको मुक्ति प्रद ज्ञान दिया जो आगम कहलाया ॥

हरियाणवी भजनः–

तर्जः– सदा

महावीर त्रिशला नन्दन तेरी होरी जय जयकार,
तीन लोक में वर्धमान तेरी महिमा अपरम्पार ॥

1. राजपाट नै छोड़ जगत का चाले करण भला,
आपै मैं अपणा कै पूरी ज्ञान की कला,
यज्ञ हवन और ऊंच नीच का बदल्या फैंसला,
घूम-2 चौगरदै भर दिया धर्म का तला,
42 वर्ष अहिंसा जग में बरसी मूसलधार ॥

2. कर्मों के दल बादल थे तन्नै सारे सोख दिए,
इन्द्र आदि देव मदद मैं कहके रोक दिए,
विषय विकार तपस्या की अग्नि में झौंक दिए,
पालियाँ नै कान्नां मैं तेरे किल्ले ठोक दिए,
बिच्छू सांप बघेरां के तन्नें तन पै ओटे वार ॥

3. सब तैं घणी विशाल बणी तेरे जीवन की लड़ी,
साढे बारह साल तपे पर सोए दो घड़ी,
सात बार शूली की डोरी गल के म्हैं पड़ी,
डाकू चोर बणाया कई बै खाई चोट कड़ी,
फिर भी प्रेम भरी करुणा के बदले नहीं विचार ॥

4. धन-2 सै तेरे मात पिता नै गोद खिलाया तैं,
धन-2 हो या धरती जिसपै खेल्या खाया तैं,
धन-2 से तेरे जीवन नै भगवान् कहाया तैं,
धन-2 हो तेरी वाणी नै अमृत बरसाया तैं,
मुन्शीराम मनवचन काया तै वन्दै बारम्बार ॥

चतुर्थ-प्रवचन

भजनः–

तर्जः– दुनिया में ऐसा कहाँ सबका नसीब है

वाणी सुनाई ऐसी वीर भगवान् ने,
नया ही प्रकाश पाया भूले इन्सान ने-॥टेक॥

1. गौतम ने वाणी सुनी छोड़ा अभिमान था,
दृष्टिराग टूटा नष्ट हुआ अज्ञान था,
सीधी राह पाई उस वेद विद्वान् ने ॥

2. वाणी से बहा जब अमृत का निर्झर,
हुआ उपशान्त चण्डकौशिक विषधर,
स्वागत किया था अष्टम स्वर्ग के विमान ने ॥

3. वाणी को सुनकर अर्जुनमाली सुधर गया,
रक्तपात छोड़ा सारा नशा-सा उतर गया,
क्षय किया कर्मों का मुनि क्षमावान् ने ॥

4. सुनते ही वाणी मेघमुनि का शिथिल मन,
दृढ हुआ किया सारा जीवन अर्पण,
जोश में भी होश पाया उठते तूफान ने ॥

5. वाणी श्रवण कर अतिमुक्त मुक्त हुए,
भवसिन्धु तैरने की भावना से युक्त हुए,
जल में तिराई पात्री शिशु अनजान ने ॥

6. शालिभद्र धन्ना नन्दीषेण से कुमार थे,
भोग सम्पदाएँ छोड़ फिरे द्वार-2 थे,
मोह ग्रंथि तोड़ी वाणी के अमोघ बाण ने ॥

अनन्त ज्ञानी वीतराग प्रभु महावीर स्वामी को तथा अपने गुरु भगवन्तों को वन्दना करते हुए, उपस्थित भाई बहनों को जय जिनेन्द्र!

पर्यूषण पर्वों का सभी लौकिक पर्वों से विलक्षण स्वरूप है, अन्य लौकिक पर्व खाने-पीने-खेलने-हंसने-हंसाने के लिए आते हैं जबकि पर्यूषण पर्व आध्यात्मिक उन्नति तथा कषाय-विजय की भावना भरने आते हैं। इन पर्वों में धार्मिक मानवों को विशेष सामग्री मिलती है। ये आत्मा की कमाई का Peak Season होता है। सुबह से शाम तथा शाम से सुबह तक साधक धर्मसाधना में लीन रहते हैं, उन्हें अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की चिन्ता नहीं रहती। वे तो दो काल के प्रतिक्रमण, दो बार के प्रवचन, स्वाध्याय, प्रश्नचर्चा, ध्यान, मौन, नवकार के जाप तथा आत्मचिन्तन में इतने लीन हो जाते हैं कि उन्हें संसार और शरीर दोनों का भान नही रहता। यहाँ भी आप लोगों का ऐसा उत्साह चल रहा है। उसी उत्साह को बढ़ाने के लिए दिन में कल्पसूत्र की अर्थरूप व्याख्या आपके सामने चल रही है।

अब तक हमने जाना कि 30 साल की उम्र में प्रभु महावीर ने दीक्षा अंगीकार की, कितनी ही अग्नि परीक्षाओं से गुजरे, हर बार उनकी जीवन-आभा अधिक निखर कर बाहर आई, लक्ष्य निकट प्रतीत होने लगा था, भगवान् के आध्यात्मिक कदम और द्रुततर एवं प्रलम्बतर होने लगे। उनके लिए वीरत्थुई में श्री सुधर्मा स्वामी ने लिखा हैः—

था अनुत्तर सब ही उनका धर्म भी और ध्यान भी।
शुक्लता में शंख चन्द्र, नहीं शतांश समान भी ॥

इसी पहलू को स्पष्ट करते हुए कल्पसूत्र में लिखा है कि भगवान् ने अपने साढ़े 12 साल अनुत्तर ज्ञान, दर्शन, चारित्र, विहार, आर्जव, मार्दव, क्षमा तथा मुक्ति, गुप्ति आदि आदि को निभाने में व्यतीत किए। ग्रीष्म ऋतु प्रारम्भ हो गई थी, वैशाख का महीना था, शुक्ल पक्ष की दसवीं थी, दोपहर बाद का समय, सुव्रत दिन, विजय मुहूर्त, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र का योग। भगवान् जृम्भिका ग्राम के बाहर ऋजुवालिका नदी के

किनारे वैयावृत्य चैत्य के पास श्यामाक गाथापति के खेत में शालवृक्ष के नीचे गोदुहिका आसन में उकडू बैठे हुए थे। बेले की तपस्या थी। प्रभु क्षपक श्रेणि में आरुढ हो गए। मोहनीय कर्म की सभी प्रकृतियों को समाप्त कर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय तथा अन्तराय कर्म इन तीन घाती कर्मों को भी प्रभु ने अन्तर्मुहूर्त में समाप्त कर दिया और उन्हें अनन्त अनुत्तर प्रतिपूर्ण केवल ज्ञान-केवल दर्शन प्रकट हो गया।

बोलिए सर्वज्ञ सर्वदर्शी, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की जय

केवलज्ञान, सर्वज्ञता से प्रभु महावीर देव, मनुष्य, असुर आदि सर्व प्राणियों की गति, आगति, स्थिति को, मानसिक भावों को, खाए पीए को प्रकट या गुप्त कार्यों को स्पष्टतया देखने लगे। उनके लिए कोई रहस्य नहीं रहा। अनादि काल से आत्मा पर छायी हुई अंधकार की परतें उतरने से उनकी आत्मा उसी तरह जगमगा उठी जिस प्रकार बादलों के हटने पर सूर्य।

जब तक भगवान् महावीर छद्मस्थ रहे तब तक उन्होंने उपदेश नहीं दिया। वाणी से किसी को मार्ग दर्शन नहीं दिया, पर अब तो वे परिपूर्ण हो चुके थे। अब संसार अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता था, धार्मिक मूढ मान्यताओं का जाल सामान्य मानवों के गले का फन्दा बन चुका था सामाजिक, राजनैतिक विषमताओं ने धरती की चेतना को संवेदन शून्य बना दिया था। तथाकथित ज्ञानियों ने भ्रान्तियाँ फैलाकर जनता को भ्रमित कर रखा था। त्यागी और तपस्वी केवल देह दमन को धर्म मान रहे थे तथा मनवा रहे थे। सृष्टि का चप्पा-2 किसी सच्चे ज्ञानी आत्मजयी वीतराग प्रभु की बाट जोह रहा था जो उन्हें उस दलदल से निकाल दे। आज आश्वासनों की मंगल घड़ी उदय में आई थी।

सुकूने कल्ब की हल्की सी उमीद भी काफी है,
कि नूरे सुबह की पहली किरण बारीक होती है।
जो ग़म हद से ज्यादा हो खुशी नजदीक होती है,
चमकते हैं सितारे रात जब तारीक होती है ॥

केवल ज्ञान होने के एक मुहूर्त तक प्रभु को वहीं उस खेत में ठहरना था अतः देव गण तत्काल भूमि पर आए और प्रथम समवसरण की रचना करी, परन्तु प्रभु वाणी का अमृत पीने के बाद भी वे त्याग और प्रत्याख्यान स्वीकार नहीं कर सके। इसलिए भगवान् की पहली परिषद् 'अभाविता' (निष्फल) रही जो कि एक अच्छेरा = आश्चर्य माना जाता है।

अब भगवान् को तीर्थंकर नाम कर्म का वेदन करने के लिए तीर्थ की रचना करनी थी अतः उन्होंने मध्यम पावा में पधारने का संकल्प बनाया क्योंकि वहाँ इन्द्रभूति-अग्निभूति-वायुभूति आदि ग्यारह महान् विद्वान् ब्राह्मणों के नेतृत्व में सोमिल ब्राह्मण एक विशाल यज्ञ का आयोजन कर रहा था। उनके 4400 शिष्यों के अलावा भारत भर के धुरन्धर पण्डित भी उस यज्ञ में सम्मिलित हो रहे थे। अगले ही दिन भगवान् का समोसरण मध्यम पावा के महासेनवन उद्यान में रखा गया। देवगण अपने-2 विमानों से दर्शनार्थ आ रहे थे। यज्ञकर्ता पण्डित तो ये सोचने लगे कि हमारे मन्त्रों से आकृष्ट होकर देवगण यहाँ आ रहे हैं, पर वे तो यज्ञ मण्डप को लांघकर प्रभु के समोसरण में जा पहुंचे। पंडित बड़े तिलमिलाए, पता चला कि प्रभु महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ है। पण्डित श्रेष्ठ श्री इन्द्रभूति ने सोचा— मैं अभी उस पण्डित-ज्ञानी का मान-मर्दन कर देता हूँ और वह अपने 500 शिष्यों को लेकर वाद-मुद्रा बनाकर पहुंच गया प्रभु चरणों में। प्रभु ने उन्हें सम्बोधित करते हुए फरमाया— आ गए हो इन्द्रभूति गौतम। अपना नाम सुनकर गौतम चकित रह गए। फिर सोचा-मेरा नाम तो दुनिया जानती है। यदि ये मेरे मन के सोए हुए संशयों को बता दें तो मैं इन्हें सर्वज्ञ मान लूं और प्रभु ने वो भी बता दिया— गौतम! तुम्हें जीव के अस्तित्व के सम्बन्ध में संशय है, बस फिर क्या था, गौतम जी का सारा अहंकार पानी-2 हो गया। फिर प्रभु ने उनकी शंकाओं का पूर्ण समाधान किया। अब गौतम जी को क्या चाहिए था, कहने लगे— प्रभु! मुझे अपनी शरण में ले लो। 500 शिष्यों के साथ तत्काल प्रव्रजित हो गए।

अपने बड़े भाई को महावीर प्रभु के चंगुल में फंसा समझकर अग्निभूति मैदान में आए पर प्रभु महावीर की सर्वज्ञात्री वाणी के वे भी कायल हो गए। वायुभूति आदि सभी विद्वान् अपने-2 शिष्यों के साथ एक एक करके आते गए तथा भगवान् के चरणों में प्रणत होते गए। इस प्रकार वैसाख सुदी एकादशी के रोज प्रभु ने तीर्थ स्थापना की। ग्यारह विद्वान् गणधर बने तथा चन्दन वाला को साध्वी संघ की प्रमुखा बनाया गया। साधु साध्वी श्रावक श्राविका इन चार तीर्थों की रचना तथा उनकी नियमावलि का निर्धारण हुआ। ग्यारह गणधरों के 9 गण बनाए गए क्योंकि अकम्पित व अचलभ्राता तथा मेतार्य व प्रभास ने संयुक्त रूप से एक-एक गण बनाया।

भजनः–

1. **ऐ वीर तेरी वो जिन्दगानी तेरा वो बचपन तेरी जवानी,**
   तेरा सभी कुछ है याद आता है सबसे बढ़ करके तेरी वाणी ॥

2. **वीर तुम्हारे पद पंकज युग इस धरती पर जिधर चले,**
   कदम-कदम पर दिव्यभाव के सुरभित स्वर्णिम फूल खिले ॥

3. **हिंसा घृणा वैर के कण्टक ध्वस्त बने पीड़ा कारी,**
   जन-2 में निष्काम प्रेम की महक उठी केसर क्यारी ॥

4. **जो देवों का देव देवता जिसके चरणों में श्रद्धानत,**
   अन्तर के कण-2 से वन्दन उसी वीर को पल-2 संतत ॥

तर्जः– मेरा छोटा सा-

गाना है वीर गुणगान, पाना है धर्म वरदान,
था जीवन चरित्र महान्, सुनने से हो कल्याण ॥टेक॥

ग्यारह गणधर प्रतिबुद्ध हुए, सिद्धान्त पुराने शुद्ध हुए,
बने ज्ञान निधि तप खान ॥

भगवान् महावीर का धर्मचक्र प्रवर्तित हो चुका था उन्होंने यज्ञों में होने वाली हिंसा को रोका। शूद्रों पर जो अमानवीय अत्याचार उस युग में हो रहे थे वे प्रभु की दिव्यवाणी के प्रभाव से रुके। विधवा होने पर नारियों को सती होने के लिए विवश किया जाता था अर्थात् पति के साथ चिता पर जीवित जलने के लिए मजबूर किया जाता था, उस घृणित परम्परा का स्वरूप भगवान् महावीर ने बदला। माँसाहार और मद्यपान जैसी कुत्सित प्रवृत्तियों पर ब्रेक लगा। परिग्रह के लिए की जाने वाली झूठ, बेईमानी, चोरी, क्रूरता थमी। आपसी युद्धों के बादल छंटे। पारस्परिक प्रेम का नया सूत्रपात हुआ। भोग विलास के आगोश में पलने वाले सहस्रों युवक युवतियों ने प्रभु के कण्टकाकीर्ण परन्तु मुक्तिप्रद मार्ग को अपनाया।

विश्व का आलोक बन महावीर आए थे,
गगन और धरती ये दोनों जगमगाए थे ॥

तामसी वृत्ति के प्राणी डरके भागे थे,
प्रिय जिन्हें आलोक था वे आए आगे थे,
दिग्-दिगन्त प्रकट प्रभु ने सब दिखाए थे ॥

आत्मा परमात्मा का ज्ञान दे करके,
सूक्ष्म से भी सूक्ष्म का विज्ञान दे करके,
अन्ध से भी अन्ध शतचक्षु बनाए थे ॥

यों तो प्रभु के अवदानों का परिगणन करना असंभव है तदपि कुछ उदाहरण केवल उस ओर संकेत के रूप में प्रस्तुत करने हैं। यद्यपि कल्पसूत्र में उनका विवरण नहीं है परन्तु उपयोगी और प्रासंगिक होने से अन्य ग्रन्थों से उनको उद्धृत करेगें।

जब प्रभु महावीर का वैशाली के उपनगर ब्राह्मण कुण्ड ग्राम में पदार्पण हुआ तब ऋषभदत्त ब्राह्मण तथा देवानन्दा प्रभु के दर्शन करने आए। भगवान् का मुखमण्डल देखकर देवानन्दा का अन्तर्मन और तन

उद्वेलित हो उठा। उसके स्तनों से दूध झरने लगा, मातृत्व का वह सैलाब सबके लिए आश्चर्यकारी था। गौतम स्वामी ने पूछा– प्रभो! देवानन्दा की ये मानसिक और शारीरिक दशा क्यों हो रही है? तब पहली बार प्रभु ने रहस्य उद्घाटित किया कि गौतम! ये मेरी माँ है, मैं इसकी कुक्षि में 82 रात रहा हूँ, इन्द्र, हरि-नैगेमेषी तथा मेरे अलावा किसी को इस रहस्य का ज्ञान नहीं है। पर इस देवी का रोम-2 अज्ञात रूप से उस गहन रहस्य को जानता है, और उसी का यह प्रकट रूप दिखाई दे रहा है।

संसार को प्रथम बार यह तथ्य ज्ञात हुआ और प्रभु के ब्राह्मण माता पिता ने तत्काल दीक्षा ले ली। क्षत्रिय कुण्ड ग्राम से प्रभु का भानजा और दामाद जमालि भी उनके चरणों में आया, बड़े ऊंचे भावों से दीक्षा भी ली पर कुछ समय बाद स्वतन्त्र मार्ग बना लिया।

प्रभु महावीर के शब्दों में एक ऐसा जादू था कि अनादि काल की सोई आत्मा भी तत्काल जाग जाती थी। प्रभु महावीर राजगृह में पधारे, वहाँ तो भगवान् की धर्म राजधानी ही कायम हो गई। श्रेणिक और चेलना ने प्रभु की भक्ति में सब कुछ भुला दिया। राजा श्रेणिक के सुपुत्र मेघकुमार ने भर यौवन में भोगों का त्याग किया और मुनिवृत्ति अंगीकार की। एक रात के लिए यद्यपि परिणाम डगमगाए भी पर प्रभु ने तत्काल उन्हें संभाल लिया। अनुत्तरोपपातिक जी में वर्णन है कि राजा श्रेणिक की अलग-2 रानियों के 23 पुत्रों ने भगवान् की धर्मदेशना सुनकर दीक्षा अंगीकार की।

भजनः–

तर्जः– मेरा छोटा-सा-

गाना है वीर गुणगान, पाना है धर्म वरदान,
था-जीवन चरित्र महान् सुनने से हो कल्याण ॥टेक॥

देवानन्दा आए ऋषभदत्त, दीक्षा लेकर बने अप्रमत्त,
पाया था सिद्धिस्थान ॥

श्रेणिक का बेटा मेघमुनि, घबराया प्रभु की ध्वनि सुनी
बना स्थिर चित्त संयमवान् ॥

भगवान् महावीर की धर्मक्रान्ति का एक उज्जवल पक्ष ये रहा कि जहाँ उन्होंने साधु साध्वी वर्ग के लिए मुक्तिमार्ग की प्ररुपणा की वहीं घर में रहकर जीवन यापन करने वाले नर नारियों को अपनी कृपा दृष्टि से वंचित नहीं होने दिया। उस युग में कुछ धर्म परम्पराओं में धारणा बनी हुई थी कि गृहस्थाश्रम ही सबसे बड़ा स्थान है, इसी में रहकर आदमी का कल्याण हो सकता है। सन्यास या दीक्षा की कोई जरूरत नहीं है। दूसरी ओर कुछ धर्म-परम्पराओं में यही प्ररुपणा थी कि कल्याण तो सन्यास लेने पर ही हो सकता है, गृहस्थ के लिए धर्म-ध्यान की कोई संभावना नहीं है।

भगवान् महावीर ने फरमाया– **धम्मे दुविहे पण्णत्ते-आगारे चेव अणगारे चेव** अर्थात् धर्म दो तरह का है– आगार धर्म तथा अणगार धर्म। गृहस्थों को भी प्रभु ने अपने धर्मसंघ में सम्मानित स्थान दिया। जब प्रभु का वाणिज्यग्राम में पदार्पण हुआ तब आनन्द नामक गाथापति उनके दर्शन करने आया। उसे लगा कि भगवान् का सन्देश बिलकुल Practical है, परिवार, समाज, राष्ट्र के साथ-2 आत्मा की सुरक्षा भी इनके उपदेशों से सम्भव है। उसने कहा– प्रभो, मुझे आपके कथन पर पूर्ण श्रद्धा है पर मेरी मजबूरी है कि मैं साधु नहीं बन सकता, कुछ जिम्मेवारियाँ हैं कुछ मानसिक मजबूरियाँ हैं। तो भी मैं जीवन को धार्मिक सीमाओं से अलंकृत कर सकता हूँ। और उसने श्रावक के 12 व्रत ग्रहण कर लिए।

दीर्घकाल तक 12 व्रतों का यथाविधि पालन करते-2 उसे इतना आनन्द आने लगा कि ढलती उम्र में उसने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का भी अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। उसका अधिकांश समय आत्म साधना में बीतने लगा और जब जीवन का विल्कुल आखरी दौर आता दिखाई दिया तो संथारा ग्रहण कर लिया और उन्हें अवधि ज्ञान प्रकट हो गया। पहला देवलोक, पहली नरक, चुल्ल हिमवन्त पर्वत, लवण

समुद्र उन्हें साफ-2 दिखाई देने लगा। सौभाग्य से उन्हीं दिनों भगवान् महावीर भी वाणिज्य ग्राम पधार गए, उनके ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति गौतम आहार के लिए नगरी में पधारे तो उन्हें पता चला कि आनन्द श्रावक ने संथारा ग्रहण किया हुआ है। श्रावक धर्म का सम्मान करने वाले श्री गौतम स्वामी आनन्द की पौषधशाला में पधारे, उन्हें देख श्रावक का रोम-2 खिल गया। कहने लगा— प्रभो! मैं उठकर वन्दना करने में असमर्थ हूँ कृपया आगे आकर मेरी वन्दना स्वीकार कर लें। श्री गौतम स्वामी ने श्रावक की भावना पूर्ण की, वन्दना के अनन्तर श्रावक ने पूछा— प्रभो, क्या श्रावक को अवधिज्ञान हो सकता है? गौतम जी बोले— हाँ, हो सकता है। हे प्रभो! मुझे भी अवधिज्ञान हुआ है और मैं प्रथम देवलोक, प्रथम नरक, लवण समुद्र तथा चुल्ल हिमवन्त पर्वत तक का सारा इलाका स्पष्ट देख रहा हूँ। गौतम को शंका हुई कि कहीं श्रावक जी भावुकतावश तो ऐसा नहीं कह रहे हैं। ऐसा कहाँ सम्भव है जिन्दगी भर दुनियादारी में उलझा आदमी केवल संथारा लेते ही इतना बड़ा ज्ञान हासिल कर ले। अतः कहने लगे— श्रावकजी, थोड़ा विवेक से बोलो, ऐसी भाषा सही नहीं है। इसका दण्ड प्रायश्चित लेकर शुद्धि कर लो। मगर आनन्द श्रावक अपने आप में बहुत स्पष्ट था। अतः उसने पूछा— भगवन्, प्रायश्चित सच्चे को आता है या झूठे को? गौतम जी बोले— प्रायश्चित तो झूठे को आता है, तब विनय पूर्वक श्रावक ने निवेदन किया— प्रभो, फिर तो आप ही प्रायश्चित ग्रहण कीजिए। गौतम जी मौन हो गए, वापिस प्रभु चरणों में आ गए, यद्यपि उनके पास अवधि और मनःपर्याय ज्ञान जैसी विशिष्ट लब्धियाँ थी पर इन लब्धियों से भी किसी आत्मा के ज्ञान को और ज्ञान की सीमा को जाना नहीं जा सकता। क्योंकि ये दोनों लब्धियाँ रूपी पदार्थों को ही देख सकती है। जबकि ज्ञान अरूपी है अतः इस विषय में तो भगवान् महावीर ही प्रमाणिक बात कह सकते हैं।

गौतम के नजदीक आते ही भगवान् ने फरमाया— गौतम! आनन्द श्रावक सत्यवादी है अतः तुम उनके पास जाकर क्षमा-याचना करो।

यहाँ देखिए भगवान् ने एक श्रावक को कितना ऊँचा दर्जा दिया है। भगवान् महावीर तो सत्य के साथ थे और इस प्रसंग पर उन्होंने आनन्द श्रावक का साथ दिया, अपने शिष्य का नहीं। गौतम जी तत्काल आनन्द श्रावक के पास गए और क्षमायाचना की। इस तरह हम जान सकते हैं कि भगवान् की निगाह मे श्रावक और श्रावक धर्म कितना बड़ा था। कामदेव, महाशतक, सकडालपुत्र, शंख, पोखली, शतक आदि अनेक श्रावकों को भगवान् ने मोक्षमार्ग पर प्रपन्न किया।

भजनः–

तर्जः– मेरा छोटा-सा

गाना है वीर गुणगान, पाना है धर्म वरदान,
था जीवन चरित्र महान्, सुनने से हो कल्याण ॥टेक॥

आनन्द आदि जो श्रावक थे, चरणोपासक आराधक थे,
सब चढ़े धर्म जलयान ॥

जयन्ती-रेवती-सुलसा-चेलना आदि श्राविकाओं ने प्रभु के तीर्थ में अपना स्थायी स्थान बनाया हुआ था। जयन्ती श्राविका ने भगवान् के समोसरण में प्रश्नोत्तर किए थे। रेवती ने प्रभु की रुग्णावस्था में औषध का दान दिया और तीर्थंकर-गोत्र का अर्जन किया। सुलसा को प्रभु ने अम्बड़ परिव्राजक के माध्यम से धर्म सन्देश भिजवाया। चेलना के शील की दुहाई देकर प्रभु ने उसके सम्बन्ध में पनपे सन्देह के अंकुर को समूल उखाड़ा।

एक महत्वपूर्ण कार्य जो प्रभु महावीर भगवान् का रहा वह था 23वें तीर्थंकर के धर्म शासन का विलीनी-करण। चूंकि भगवान् पार्श्वनाथ के बाद 250 सालों में ही उनका धर्मपरिवार काफी अव्यवस्थित हो चला था, संयम की दृढता भी कम हो चली थी अतः उसका परिमार्जन करना अत्यन्त आवश्यक था। वह तभी सम्भव था जब वे भगवान् महावीर

के संघ में सम्मिलित हों। गांगेय अणगार, उदक पेढाल, कालास्यवेषि पुत्र आदि प्रसिद्ध विद्वान् मुनिराजों का भगवान् से या गौतम स्वामी से वार्तालाप हुआ। जब उनका समाधान हुआ तब भगवान् ने एक बात विशेष रूप से कही कि भगवान् पार्श्वनाथ की प्ररूपणा भी ऐसी ही थी जैसी की मेरी। उनमें और मुझमें कालकृत अन्तर तो है भावकृत अन्तर नहीं है। हम दोनों समान हैं। एक हैं। श्रावस्ती में गौतम स्वामी, एवं केशी कुमार श्रमण का वार्तालाप और मिलन तो जैन इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ है, जब चतुर्याम और पांच महाव्रतों तथा सचेल और अचेल की समस्याओं का तर्क पूर्ण विवेचन और समाधान हुआ था।

भगवान् महावीर प्रत्येक व्यक्ति की अच्छाई को उजागर कर उसे आगे बढाते थे। एक बार भगवान् ने गौतम स्वामी से कहा था— गौतम! आज तेरा पुराना मित्र आएगा और वह दीक्षा लेगा। गौतम स्वामी जब आगे आकर उसे देखने आए तो उनका मित्र स्कन्दक परिव्राजक था। गौतम स्वामी ने उसका दिल खोलकर स्वागत किया। उस सद्व्यवहार से स्कन्दक बड़ा प्रभावित हुआ। कुछ प्रारम्भिक चर्चा के बाद वह भगवान् के शासन में ही सम्मिलित हो गया। अम्बड़ परिव्राजक भी भगवान् की श्रद्धा रखने वाला 12 व्रती त्यागी पच्चक्खानी श्रावक था।

धन्ना शालिभद्र जैसे धनाढ्य पुरुषों ने जब प्रभु के पास मुनिवृत्ति ग्रहण की तब पूरे देश में तहलका मच गया था। आर्द्रकुमार जैसा विदेशी युवक स्थान-2 पर भटकता हुआ जब भगवान् के चरणों में पहुंचा तब उसकी सारी भटकन खत्म हो गई। और अर्जुन माली का वृत्तान्त क्या भुलाया जा सकता है? राजगृह की सन्त्रस्त संतप्त जनता को अर्जुनमाली के प्रकोप से मुक्त किया था प्रभु महावीर ने। एवन्ता की नाव तिराई थी भगवान् के पावन आशीर्वाद ने। आठ राजाओं ने राज्य त्यागकर प्रभु के पाद-पद्मों में चारित्र स्वीकार किया था। उनके नाम हैं— वीरांगक, वीरयश, संजय, एणेयक, सेय, शिव, उदय, शंख। श्रेणिक राजा की सधवा और विधवा अनेक रानियों ने प्रभु के उपदेश से प्रतिबोध पाकर चरित्र धर्म अपनाया था।

चार तीर्थ के अलावा भी लगभग सारा भारतवर्ष प्रभु के प्रति श्रद्धा भावना रखता था, जैसे वैशाली गणराज्य के अध्यक्ष चेटक जो पहले भगवान् पार्श्वनाथ के भक्त थे बाद में भगवान् के श्रावक बने, उनके छः दामाद थे– उदायन, दधिवाहन, शतानीक, चण्डप्रद्योत, नन्दीवर्धन और श्रेणिक। और कमाल की बात है कि छहों भगवान् के उपासक थे। 9 मल्लवी और 9 लिच्छवी 18 गण-नृप भी प्रभु के अनुयायी थे। समूचा भारतवर्ष प्रभु के जीवन-दर्शन, प्रवचन एवं सिद्धान्तों का कायल था।

भगवान् की कृपा के चन्द उदाहरणों को सुनकर-सुनाकर उसी वातावरण में जाने का प्रयास करेंगे, जिस वातावरण में तत्कालीन जनता भगवान् के दीदार करती थी।

भजनः–

तर्जः– दीदी तेरा देवर दीवाना-

दुनिया ने है दिल से पुकारा, महावीर तेरा ही है सहारा।
तोड़ दो ये कर्मों की कारा, महावीर तेरा ही है सहारा ॥टेक॥

1. गौतम ने तुमको हराना था चाहा,
   मगर तुमने उसका भी संशय मिटाया,
   बना वो तुम्हारे चरण का पुजारी,
   अब है हमारी भी आ गई बारी,
   दे दो अब हमको किनारा ॥

2. बिकी थी बेचारी वो चन्दना कुमारी,
   मुंडे केश बंदी थी किस्मत की मारी,
   भूखी थी लेकिन प्रभु को न भूली,
   किए तेरे दर्शन हंसी और फूली,
   फिर भी बही अश्कों की धारा ॥

3. दरिन्दों ने मन्दिर में जुल्म था ढाया,
अर्जुन माली को शैतां बनाया,
सुनी तेरी वाणी वो शान्ति थी पाई,
धुले पाप सारे की तप की कमाई,
कैसा था वो अद्‌भुत नजारा ॥

4. बालक एवन्ता ने गौतम को देखा,
उठी लहर मन में जगी भाग्य रेखा,
सुना ज्ञान तेरा बना श्रेष्ठ मुनिवर,
तिराई थी पात्री तो तुमने ऐ जिनवर,
मुनियों को दिया था इशारा ॥

भगवान् की कृपा से जन जीवन धन्य हो रहा था। छद्‌मस्थ और केवली काल में भगवान् के कुल 42 चातुर्मास हुए। उन्हीं का उल्लेख करते हुए कल्पसूत्रकार लिखते हैं कि भगवान् ने एक चातुर्मास तो अस्थिक ग्राम में किया। एक चातुर्मास प्रभु ने अनार्य भूमि में भी बिताया था। आलंभिका और श्रावस्ती को भी एक-2 चातुर्मास का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मिथिला में 6 हुए पर वाणिज्य ग्राम सहित वैशाली को बारह बार तथा नालन्दा सहित राजगृह को 14 चातुर्मासों का मौका मिला।

भगवान् महावीर का तीर्थ-कार्य शिखर पर पहुंच चुका था, लोक मानस ने उन्हें अवतार के रूप में स्वीकार कर लिया था, और लगता था कि यह ज्ञान सूर्य दीर्घकाल तक, चिरकाल तक, सदाकाल तक अपना आलोक बिखेरता ही रहेगा पर आयुष्य कर्म की अपनी सीमा होती है और वो अल्प ही शेष थी। वैसे भगवान् 16 वर्ष पूर्व ही घोषणा कर चुके थे कि मैं 16 साल और धरती पर गंधहस्ती की तरह विचरण करुंगा। उस वक्त तो उनका वाक्य एक बहुत बड़ा आश्वासन था पर अब तो वह एक चेतावनी की तरह कुछ अतिजागरुक लोगों की गर्दन पर लटका हुआ था।

16 वर्ष पूर्व गौशालक ने भगवान् के समवशरण में श्रावस्ती में उपद्रव मचाया था। उसने सुनक्षत्र और सर्वानुभूति नामक दो मुनियों को अपनी तेजोलेश्या का शिकार तो बनाया ही था, एक निष्फल प्रयास भगवान् की जिन्दगी पर भी किया, उसका दुष्परिणाम यह निकला कि वह सात दिन के भीतर ही दिवंगत हो गया पर भगवान् महावीर भी कुछ-2 प्रभावित हो गए, उन्हें खूनी दस्त लग गए। संघ में चिन्ता व्याप्त हुई कि कुछ अनिष्ट होने वाला है। संघ को आश्वस्त करने के लिए ही भगवान् ने आहार के रूप में ही एक घरेलू औषधि का सेवन किया और वह रोग ठीक हो गया तब प्रभु ने फरमाया था कि मुझे अभी 16 साल और जीना है। वे 16 साल भी अब व्यतीत होने जा रहे थे।

72 वर्ष की प्रौढ-परिपक्व आयु में प्रभु ने पावा नगरी के राजा हस्तिपाल की रज्जुक सभा में चातुर्मासार्थ प्रवेश किया। जिज्ञासु वर्ग अपनी जिज्ञासाएँ शान्त कर रहा था, दीक्षार्थी दीक्षा ले रहे थे। कुछ श्रावक धर्म में प्रवेश पा रहे थे बहुत सारे व्यक्ति प्रभु के दर्शनों से ही कृतार्थ हो रहे थे। धर्म गंगा का प्रवाह बह रहा था। सावन बीता भादों गुजरा तथा आसोज मास भी चला गया, कार्तिक का कृष्ण पक्ष संसार के लिए अन्धकार की गहरी परतें विछाने लगा था। देश के सब धार्मिकजनों की निगाहें पावा नगरी की ओर लगी हुई थी। काशी-कौशल के मल्लवी और लिच्छवि गण राजाओं के अलावा नन्दीवर्धन तथा अनेकों भक्त भगवान् के समवसरण में आए हुए थे। अमावस्या का दिन था। सब श्रावकों ने पौषध धारण किया हुआ था। भगवान् महावीर ने भी दो दिन से आहार पानी ग्रहण नहीं किया था। और उनकी दिव्यवाणी का उद्घोष निरन्तर गुंजित हो रहा था। इन्द्रभूति के नेतृत्व में मुनि संघ तथा चन्दना जी के नेतृत्व में साध्वी संघ उपस्थित था। उसी समय भगवान् ने इन्द्रभूमि गौतम को सम्बोधित करते हुए फरमाया कि गौतम! तुम्हें आज समीपवर्ती ग्राम

में देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने जाना है, बड़ा कठिन आदेश था, क्योंकि भगवान् का अन्तिम समय निकट जानकर सारी दुनिया तो यहाँ आ रही है और गौतम जी को दूर भेजा जा रहा है।

निरन्तर 30 साल से गौतम जी प्रभु से अभिन्न होकर रहे थे, छाया बनकर जिए थे, उनके सांसो की धड़कन बनकर रहे थे। उन्हीं गौतम जी को इस 'आखरी दिन' क्या अलग होना पड़ेगा, बड़ी उलझन थी। प्रभु ने फरमाया– 'तुम मुझसे चिरकाल से बंधे हुए हो, स्नेह भाव के कारण तुम्हें केवल ज्ञान नहीं हुआ। तूने मेरी हर आज्ञा का पालन किया है, सेवा की है, जन्म जन्मों तक साथ रहे हो और मोक्ष में भी साथ ही रहोगे पर अब तो संघ-कार्य के लिए जाना ही पड़ेगा।' गौतम जी ने तुरन्त आज्ञा का पालन किया और ये सोचकर कि सूर्यास्त से पूर्व वापिस लौट आऊंगा, वे देव शर्मा को धर्म-दृष्टि देने चल दिए, पर कहाँ आ पाए? वहीं पर रुकना पड़ा।

कार्तिक अमावस्या की रात्रि प्रारम्भ हो गई, देव देवियाँ आ रहे थे, मानवों के जत्थे हाथों में दीप लेकर आ रहे थे और समोसरण के बाहर दीपकों को रख अन्दर प्रवेश कर रहे थे। भगवान् दो दिनों से देशना फरमा रहे थे– 55 अध्ययन दुखविपाक तथा 55 अध्ययन सुख विपाक के सुना चुके थे, 36 अध्ययन उत्तराध्ययन के पूरे कर चुके थे, 37वां मरूदेवी माँ का अध्ययन चल रहा था। लोग सांस थामे, टकटकी लगाए प्रभु को निहार रहे थे। स्वाति-नक्षत्र का योग था तब भगवान् ने पहले अपने स्थूल मन वचन काया के योग को रोका फिर सूक्ष्म योगों का निरोध किया और चौदहवें गुणस्थान में "समुच्छिन्न क्रिया अनिवृत्ति" नामक शुक्ल ध्यान के बल से चार अघाती कर्मों को खपाकर, शरीर से आत्म प्रदेशों को निकालकर एक समय में ऋजुगति से लोकान्त में जाकर शाश्वत सिद्ध हो गए। यह भगवान् का निर्वाण कल्याणक था।

भजनः–

तर्जः– मेरा छोटा-सा-

गाना है वीर गुणगान, पाना है धर्म वरदान,
था जीवन चरित्र महान्, सुनने से हो कल्याण ॥टेक॥

गौतम जी को भेजा बाहर, हो जाए कहीं ना मोहातुर,
रात्रि में हुआ निर्वाण ॥

उधर रात भर गौतम जी को व्याकुलता सी बनी रही कि मैं किसी तरह भगवान् के चरणों में पहुंच जाऊं पर प्रभु के निर्वाण के बाद हजारों नरनारी जब अपने घरों की ओर लौटे तब श्री गौतम जी को पता चला कि प्रभु तो देह त्याग कर निर्वाण प्राप्त कर गए हैं तब श्री गौतम जी का धैर्य टूट गया। कभी सोचा भी न था, कल्पना भी नहीं की थी कि भगवान् महावीर नहीं रहेगें। विश्व के लाखों विषयों पर गौतम जी का चिन्तन गया था, जन्म और मृत्यु जैसे मुद्दे उनकी गहन प्रज्ञा का हिस्सा बने थे पर भगवान् महावीर का देह विलय उनके लिए ऐसा विषय था जिसके सम्बन्ध में न उन्होंने कभी सोचा था और न कभी सोचना चाहा था। अत्यन्त रागाकुल मानस का स्वभाव ही ऐसा होता है कि अपने प्रिय के सम्बन्ध में यथार्थपरक दृष्टिकोण बना ही नहीं पाता। यही स्थिति गौतम स्वामी की थी। इस मानसिकता वाले मानव को जब असलियत का भाव होता है तब उसके लिए समझौता करना कठिन हो जाता है, और वह टूट जाता है। गौतम जी भी टूट ही गए, बिलख पड़े– प्रभो! तुम मुझे बिना कहे ही क्यों चले गए, क्या मैं आपके पथ में बाधा डालता? स्मृतियों की लम्बी शृंखला गौतम स्वामी के मानस पर उभरने लगी और तभी उनकी विचारधारा ने एकदम मोड़ लिया, याद आने लगा भगवान् का एक-एक शब्द जिसमें कहा गया था– अपने स्नेह बन्धनों को काट, तूने सागर को पार कर लिया है, इस गंगा को भी लांघ जा। हे गौतम! क्षण भर भी प्रमाद

न कर। भगवान् की वाणी सुनते-2 तीस वर्ष बीत गए थे। शास्त्र पढ़ा-पढाकर शिष्यों को वीतराग बना दिया था पर अपना सूक्ष्म स्नेह बन्धन नहीं टूटा था, आज भगवान् के जाते ही वह बन्धन भी टूट गया। टूटने की देर थी कि आत्मा क्षपक क्षेणी में आरुढ हो गई और देखते ही देखते केवल ज्ञान, केवल दर्शन प्रकट हो गया, वे अब भक्त की जगह भगवान् बन गए। इसलिए जैन समाज में एक वाक्य मन्त्र की तरह जपा जाता है

महावीर स्वामी पहुंचे निर्वाण।
गौतम स्वामी उपज्यो केवल ज्ञान ॥

गौतम स्वामी के संदर्भ में एक बड़ा प्यारा श्लोक प्रचलित हैः—

अहंकारोऽपि बोधाय रागोऽपि गुरुभक्तये,
विषादः केवलायाभूत् चित्रं श्री गौतम प्रभोः ॥

अर्थात् श्री गौतम प्रभु की क्या निराली बाते हैं उनका अहंकार उन्हें तत्वज्ञान की तरफ ले गया, उनका राग उन्हें गुरु भक्ति में डुबो गया तथा उनके विषाद ने उन्हें केवल ज्ञान तक पहुंचा दिया।

दूसरी ऐतिहासिक घटना जो उस रात से जुड़ी हुई है उसका उल्लेख कल्पसूत्र में इस प्रकार है कि भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् नौ मल्लवी तथा नौ लिच्छवी 18 गण राजाओं ने अगले दिन पहले तो पौषधोपवास का पारणा किया और उसके बाद एक सामूहिक निर्णय लिया कि भगवान् महावीर भाव-उद्योत यानि असली प्रकाश के पुञ्ज थे, उनसे अध्यात्म शान्ति, लोक कल्याण का आलोक निरन्तर बहता रहा था। अब वह प्रकाश तो लुप्त हो गया परन्तु अब हम उसकी याद में प्रतिवर्ष प्रतीक रूप में कार्तिक अमावस्या की रात में द्रव्य उद्योत = दीपकों की रोशनी किया करेगें और इतिहास साक्षी है उसके बाद भारत वर्ष में दीपावली का त्यौहार प्रारम्भ हो गया। इस त्यौहार की लोक प्रियता, सर्वजन ग्राह्यता के कारण बाद में संसार के सभी

धर्मों ने अपने-2 पूज्य पुरुषों का नाम भी दीपावली से जोड़ दिया पर ऐतिहासिक तथ्य ये है कि कार्तिक अमावस्या के दिन प्रकाश प्रकट करने का प्राचीनतम उल्लेख कल्पसूत्र के अलावा कहीं भी नहीं है।

उस रात से सम्बन्धित तीसरी घटना के सम्बन्ध में एक वर्णन ये है कि भगवान् महावीर के जन्म नक्षत्र पर क्षुद्र भस्म राशी नामक महाग्रह संक्रान्त हो गया जिसकी अवधि दो हजार साल की थी और उसके बाद दो हजार साल तक साधु साध्वियों के पूजा सत्कार में चमक घट गई परन्तु ये आशा की गई कि दो हजार साल बाद फिर वही जाहोजलाली लौट कर आएगी, इसीलिए हमारे गुरुदेवों की धारणा है कि भगवान् महावीर के निर्वाण के दो हजार साल बाद वीर लोकाशाह ने जब धर्मक्रान्ति की तब सकल प्रजा में जैन साधु साध्वियों के त्याग तप के प्रति फिर से सम्मान लौटकर आया।

चौथी घटना उस रात घटी कि उसी रात अनुद्धरी नामक तेइन्द्रिय कुन्थु जीवों की विशाल मात्र में उत्पत्ति हो गई। ये जीव इतने सूक्ष्म थे कि वे चल रहे हों तो थोड़े बहुत दिखाई भी पड़ जाएँ पर ठहरे हुए तो दिख नहीं सकते थे, ऐसी स्थिति में जीव हिंसा की संभावना बढ़ गई और संयम की सुरक्षा खतरे में पड़ गई, इस वास्ते बहुत सारे साधु साध्वियों ने संथारा ही कर लिया, इस दृष्टि से कि आहार त्याग से शरीर छूट जाएगा और फिर जीव हिंसा से बचाव हो जाएगा। ऐसे बलिदानी दया प्रधान मुनियों के निर्माता तीर्थंकर भगवान् महावीर प्रभु की परिवार सम्पदा का वर्णन करते हुए आगमकार कहते है कि भगवान् के 14 हजार साधु तथा 36 हजार सतियाँ थी, 1 लाख 59 हजार श्रावक तथा 3 लाख 18 हजार श्राविकाएँ थी, 300 चौदह पूर्वी तथा 1,300 अवधिज्ञानी थे, 700 केवलज्ञानी तथा 700 ही वैक्रिय लब्धिधारी थे, 500 मनःपर्याय ज्ञानी तो 400 वादी थे, उनके 700 साधु तथा 1,400 सतियाँ मोक्ष में पधारे।

एक प्रश्न सामान्य मानव के मन में कौंधता रहता है कि जब भगवान् ने केवलज्ञान पाया उसके कितने समय बाद मोक्ष प्रारम्भ हुआ

तथा उनके निर्वाण के बाद कब तक मोक्ष खुला रहा, इसका उत्तर खुद कल्पसूत्र के लेखकों ने दिया है कि प्रभु के केवल्य प्राप्ति के 4 साल बाद जीवों का मोक्ष जाना प्रारम्भ हो गया था। तथा भगवान् की तीसरी पीढी तक महान् आत्माएँ मोक्ष में जाती रही। पहली घटना को पर्यायान्तकृत् भूमि तथा दूसरी घटना को युगान्तकृत् भूमि के नाम से शास्त्रों में पुकारा जाता है।

इस तरह भगवान् महावीर की 72 साल की आयु थी, 30 साल घर में रहे, साढे 12 साल छद्मस्थ मुनि बनकर रहे और 30 साल केवलज्ञानी रहे। अन्त में सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए।

जब देवद्धिगणी क्षमाश्रमण ने शास्त्रों को लिपिबद्ध किया तब भगवान् को सिद्ध हुए 980 वर्ष हो चुके थे, कहीं-2 लिखा है कि 993 वर्ष हुए थे। इस तरह श्रमण भगवान् महावीर के जीवन की झांकियाँ चलचित्र की तरह हमारी चेतना को चमत्कृत कर रही हैं।

तेरी ऐ वीर हरिक बात याद आती है,
कदम-2 की करामात याद आती है।
गरीब दुनिया को बक्शीश की ज्ञान के धन की,
तेरी वो कीमती सौगात याद आती है ॥
गया था नूर मुजस्सिम (मूर्तिमय प्रकाश) जो नूर देकर के,
मिसाल नूर की वो रात याद आती है ॥

इस प्रकार हमने पर्यूषण के पहले 4 दिनों में भगवान् महावीर के अमृतमय जीवन के चंद पहलुओं का आस्वाद लिया। इसके पश्चात् हमें शेष 23 तीर्थकरों का भी पावन दर्शन और नाम श्रवण करना है।

आप सबके सहयोग और स्नेह की बदौलत पर्यूषणों की मंगलमय आराधना हो रही है और आशा करते हैं कि शेष चार दिन भी इसी तरह जिनवाणी का झरना बहता रहेगा। बस थोड़ा सा त्याग तप का

मन बनाइये और कर्म निर्जरा की भूमिका को मजबूत कीजिए, यही आपसे निवेदन है।

आपके धर्मभाव को बल मिले इसी भावना के साथः—

—जय जिनेन्द्र

अन्य उपयोगी भजन

तर्जः— बात सुणो श्री मयाराम जी..

धर्मचक्र का हुआ प्रवर्तन महावीर के विचरण से,
हिंसा रुकी अहिंसा का युग आया उनके प्रवचन से ॥टेक॥

1. यज्ञों में जीवित पशुओं का होम रचाया जाता था,
देव-देवियों पर पशुओं को बलि चढ़ाया था,
दे प्रसाद मस्तक पे रक्त का तिलक लगाया जाता था,
तथा श्राद्ध में पशु हत्या को धर्म बताया जाता था
जनता को मालूम भूल हुई उनके दिए संशोधन से ॥

2. प्रबल मान्यता थी विधवा पति के ही साथ मरे जलकर,
वही पति फिर मिल जाएगा अपर लोक में भी चलकर,
महावीर ने कहा कि विधवा सत्य शील में ही ढलकर,
बन सकती है सती जगत् की वन्दनीय तप उज्ज्वल कर,
धीरे-2 मुक्त हुआ नभ नारी के आक्रन्दन से ॥

3. एक और थी भ्रान्ति युद्ध में लड़कर मरे स्वर्ग पाए,
इसी हेतु कितने वीरों ने शीश सहज ही कटवाए,
महावीर ने कहा युद्ध तो घोर नरक में पहुंचाए,
स्वर्ग वही पाता जो युद्धों की उपशमना करवाए
नहीं फूल खिलते हैं कभी भी अंगारों के वर्षण से ॥

4. कितना अत्याचार था शूद्रों को जूतों में बिठलाना,
वेद सुने तो श्रवण रन्ध्र में पिघला शीशा डलवाना,
यज्ञभूमि के दर्शन से आँखों का तथा निकलवाना,
लिया घृणित से घृणित काम पर दिया न खाने को दाना,
महावीर ने मनुजमात्र को अपनाया अपनेपन से ॥

5. महावीर ने सुरापान को पतन की कहा निशानी है,
जिससे होती धर्म कर्म की सदाचार की हानि है,
माँसाहार शिकार आदि से रखनी मन में ग्लानि है,
सुखी हुआ वो महावीर की जिसने शिक्षा मानी है,
उन्नति होगी महावीर के चरणों के अनुवर्तन से ॥

6. चक्र सुदर्शन महाअस्त्र वो जिसकी धार सुतीक्ष्ण हो,
नर संहार दिग्विजय हेतु करता जो अतिभीषण हो,
धर्मचक्र है जनता को सर्वत्र धर्म का दर्शन हो,
क्षुद्र कीट भी मरे न जिससे किन्तु हृदय परिवर्तन हो,
मंगल करता मिथ्या भ्रमों और पापों के उच्छेदन से ॥

भजनः–

तर्जः–अपनी-2 बीबी...

प्रभु महावीर का जीवन फूलों का सुरभित हार है,
बीते है वर्ष हजारों मधु सौरभ बरकरार है ॥टेक॥

1. निर्भयता और अतुल शौर्य से इठलाता हर अंग था,
फिर भी क्षमा अहिंसा शान्ति का अपनाया ढंग था,
उस दया देव के दर्शन को तरस रहा संसार है ॥

2. दर्शन और धर्म की सारी व्याख्याओं का ज्ञान था,
वाद विवादों को रोका और दिया सत्य-समाधान था,
युग-2 में बहती आई वो अनेकान्त की धार है ॥

3. इच्छा और परिग्रह ने जब जकड़ा था इन्सान को,
झूठ मिलावट चोरी ने जब निगला था ईमान को,
देकर अपरिग्रह नारा सब रोका पापाचार है ॥

4. भोग वृत्ति और भोगासक्ति हैं जंजीरे चित्त की,
महावीर ने त्याग तपस्या नींव बनाई वृत्त की,
संयम तप धर्मसाधना से खोला सुख का द्वार है ॥

5. धर्म रूप आच्छन्न हुआ था आडम्बर और दंभ में,
पाप नहीं माना जाता था वैदिक हिंसारम्भ में,
थे भागे धर्म विरोधी जब सुनी वीर ललकार है ॥

6. जूआँ माँस शराब छुड़ाए जन-2 से महावीर ने,
दुराचार व्यभिचार मिटाए गंगा सी तकरीर ने,
भारत में वीर प्रभु से प्रचलित हुआ शुद्धाहार है ॥

पाचंवा प्रवचन

तर्जः– ऊँ जय जगदीश हरे...

पावन परमेश्वर भजो पावन परमेश्वर,
धर्म तीर्थ के कर्त्ता चौबीस तीर्थंकर ॥टेक॥

1. आदिदेव करुणाकर ऋषभ दयालु थे (श्री ऋषभ)
   अजित तथा संभव जी परम कृपालु थे...॥

2. अभिनन्दन जी चौथे, सुमति उजियारे (प्रभु सुमति)
   पद्म प्रभा से मण्डित पद्म प्रभु प्यारे...॥

3. श्री सुपार्श्व जिन सप्तम, वासुपूज्य स्वामी (प्रभु वासुपूज्य)
   विमल अनन्त धर्म जी प्रभु अन्तर्यामी...॥

4. शान्ति कुन्थु अर चक्री मल्ली नारीश्वर (हुए मल्ली)
   मुनिसुव्रत नमि नेमि चिदानन्द निर्झर...॥

5. पार्श्वनाथ तेईसवें महावीर अन्तिम (प्रभु महावीर)
   नर देवों से पूजित अर्चित महामहिम...॥

6. सबने निज-2 युग में भाव प्रकाश दिया (था भाव)
   मार्ग भ्रष्ट जनता को मार्ग-प्रपन्न किया...॥

7. नाम रूप धारक अरिहन्त प्रसिद्ध हुए (अरिहन्त)
   निराकार बन वो ही शाश्वत सिद्ध हुए...॥

8. चतुर्विंशति स्तव से मन को शुद्ध करें (जो मन को)
   प्रखर धर्म श्रद्धा से कलिमल सर्व हरे...॥

शासनपति श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तथा अपने पूज्य गुरूदेवों को वन्दना करते हुए समागत बन्धुओं को जय जिनेन्द्र!

पर्यूषण पर्वों की आराधना हो रही है। एक गहन अहोभाव तन मन में व्याप्त हो रहा है। अन्तस्तल से एक पुकार उठ रही है— हे मन, आज न जाने किस-2 जन्म का पुण्योदय जागृत हुआ है जो हमें तीर्थंकर भगवन्तों का शरणा मिला है, तीर्थंकरों के शासन का ये मंगलकारी पर्व किसी अतिशय पुण्यवान् को ही मनाने का अवसर मिलता है। हमें मिला है तो क्यों न अपने सौभाग्य को सराहें। पिछले चार दिनों तक महावीर प्रभु की जीवन गाथा की गंगा में हम डुबकियाँ लगाते रहे हैं। और एक जिज्ञासा बराबर बनी रही कि जैन शासन की बुनियाद तो प्रभु ऋषभदेव ने रखी थी, फिर महावीर प्रभु का ही व्याख्यान क्यों? शेष का कोई नामोल्लेख ही नहीं हो रहा। ये वास्तविकता कल्पसूत्रकार के समक्ष भी थी और उन्होंने उसका समुचित समाधान दिया है। चूंकि इस पंचम काल में सब विधि-विधान, आचार-विचार की पद्धतियाँ, त्याग-तपस्या अणुव्रत-महाव्रतों की व्यवस्थाएँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की आज्ञा के अनुसार ही चल रही हैं। सारे आगम वचन भगवान् महावीर के मुखारविन्द से निकले हैं तथा वर्तमान धर्मशासन भी भगवान् महावीर का ही चल रहा है, इसलिए अपने शासनपति के गुणगान करना तो सहज ही है पर सूत्रकार अपनी जड़ों को नहीं भूले हैं, उन्हें ध्यान है कि भगवान् महावीर भी एक सुविशाल-दीर्घकालीन परम्परा की अन्तिम कड़ी के रूप में ही इतिहास के रंगमञ्च पर उतरे थे। उनसे पूर्व जिन-2 तीर्थंकरों ने अपनी जीवनाहुतियों से जिनशासन को जीवित रखा, प्राणवन्त किया उनको भी आगामी पीढ़ी की धरोहर बनाना जरूरी है। वे तीर्थंकर हमारी बहुमूल्य विरासत की महत्वपूर्ण कड़ियाँ हैं, और आज हम उन्हीं के पाद-पद्मों में अपने श्रद्धा-पुष्प अर्पण करने उपस्थित हुए हैं।

जैन आगम में वस्तुओं को गिनने की दो विधियाँ अपनाई गई है— एक है आनुपूर्वी दूसरी है— अनानुपूर्वी। सही क्रम से कहना आनुपूर्वी है, आड़े तिरछे क्रम से कहना अनानुपूर्वी है। आनुपूर्वी दो तरह की होती है— छोटी संख्या से बड़ी संख्या की ओर बढ़ते हुए जाना पूर्वानुपूर्वी

है तथा बड़ी संख्या से छोटी संख्या की ओर अग्रसर होना पश्चानुपूर्वी कहलाती है। एक दो तीन चार पांच या पहला दूसरा.. इस तरह बोलना पूर्वानुपूर्वी कहलाती है, 5-4-3 या पांचवा-चौथा... इस तरह बोलना पश्चानुपूर्वी कहलाती है। कल्पसूत्र में तीर्थंकरों का वर्णन पश्चानुपूर्वी क्रम से किया गया है। 24वें 23वे 22वें इस तरह उतरते-2 पहले तीर्थंकर का जीवन अन्तिम क्रम पर रखा है। इसके पीछे एक और कारण है वो ये कि लोकमानस में भगवान् महावीर की स्मृतियाँ अधिक स्पष्ट थी अतः सर्वप्रथम उनका चित्रांकन करना आवश्यक था फिर पार्श्वनाथ की स्मृतियाँ भी कायम थी पर पूर्ववर्ती होने से थोड़ी मन्द थी। अरिष्टनेमी का काल और दूर होने से उनके बारे में हर व्यक्ति अवगत नहीं था, और पीछे जाएँ तो लोकमानस में अनेक तीर्थंकरों की तो स्मृति इतिहास के रूप में कम, पुराण के रूप में ज्यादा थी, अतः कल्पसूत्रकार ने पश्चानुपूर्वी की शैली अपनाकर लोक-स्मृतियों का भी सम्मान किया है।

भगवान् महावीर की बचपन से ही पार्श्वनाथ भगवान् के धर्मसंघ से निकटता थी क्योंकि उनके पिता भगवान् पार्श्वनाथ के धर्मानुयायी थे। दीक्षा काल में भी कई साधु-साध्वियों का सम्पर्क भगवान् महावीर से रहा। केवलज्ञान के बाद तो अधिकांश पार्श्वप्रभु के संतानीक साधु साध्वी भगवान् के संघ में विलीन हो गए थे। स्वयं भगवान् महावीर उन्हें 'पुरुषादानीय' most Respected Person कहते थे।

भगवान् पार्श्वनाथ के पांचों कल्याणकों का नक्षत्र विशाखा था। वे भी 10वें देवलोक से च्यवन कर बनारस के राजा अश्वसेन की महारानी वामादेवी की कुक्षि से चैत्र बदी चौथ के दिन आए थे। उनके पूर्ववर्ती 9 भवों का वर्णन कथा ग्रन्थों में विस्तार से मिलता है, जिसमें कमठ का जीव उनसे द्वेष पूर्ण व्यवहार करता है। वे भी प्रत्येक तीर्थंकर की भांति जन्म से 3 ज्ञान के स्वामी थे। पौष बदी दसमी का दिन उनके जन्म का दिन था। भगवान् पार्श्वनाथ को श्वेताम्बर परम्परा में विवाहित माना है और उनकी पत्नी का नाम प्रभावती था, जो कन्नोज के राजा प्रसेनजित की पुत्री थी। उस युग में यज्ञों का बोलबाला था, शारीरिक

तप के द्वारा अपनी धाक जमाने वाले सन्यासी स्थान-2 पर भगवान् की तरह पूजे जा रहे थे। युवा पार्श्व कुमार को ये सब सुहाता नहीं था। कमठ नामक तपस्वी ने तो हद ही कर दी थी। चारों ओर अग्नि जलाकर तपती धूप के नीचे वह खड़ा होकर आतापना ले रहा था, लोग उसकी तपस्या को देख देखकर फिदा थे। एक दिन पार्श्वकुमार भी उधर चले आए। उन्होंने देखा, बड़े-2 लक्कडों के अन्दर सर्प झुलस रहे हैं, उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं। यह काम तो तपस्वी का था कि निर्दोष तपस्या करनी थी तो एकान्त शान्त वनों में जाकर करता, आग जलाने की क्या आवश्यकता थी। पार्श्वकुमार ने हजारों लोगों के बीच उस पञ्चेन्द्रिय हत्या का पर्दाफाश किया। आम आदमी तो कराह उठे—हाय! नाग देवता को जला दिया। पार्श्वकुमार ने उन मरते हुए नाग-नागिन को धर्म का शरणा दिया और उनकी गति सुधारी। लोग एक दूसरे की तुलना करने लगे— कहाँ तो यह ढोंगी कमठ जिसे अज्ञान ने घेर रखा है और कहाँ युवा पार्श्व जो दया का मूर्तिमान रूप है। उनके भाव कविता की लाईनों में:—

धर्म पूजाघर था पहले अब तो बस बाजार है।
जिसको देखो वो ही बिकने के लिए तैयार है।
जिन्दगी जिसकी अंधेरों की तिजारत में कटी।
कैसे कह दें वो उजालों का सही हकदार है।
मैंने पूछा तो बहुत उत्तर न दे पाया कोई।
आदमी बीमार है या जहनीयत बीमार है।
लोग उसके बारे में अच्छा कहें चाहे बुरा।
मैं युवक से मिल चुका हूँ आदमी खुद्दार है ॥

असली तप का रूप प्रकट करने के लिए तथा अपने कल्याण के लिए प्रभु पार्श्व ने 30 साल की आयु में पौह बदी एकादशी के दिन पूर्वाह्न काल में दीक्षा अंगीकार की। उस दिन उनका तेला तप था।

83 दिन रात तक प्रभु पार्श्वनाथ कठोर तप का अनुष्ठान करते रहे। उसी साधना क्रम में उन पर कमठ का उपसर्ग आया। वह बाल तपस्वी काल करके मेघमाली देव बना और उन पर नाना कष्टों का प्रहार किया पर प्रभु का मन कम्पित नहीं हुआ।

1. शठ कमठ ने जो उठाई क्या बना उस धूल से,
वह स्वयं अंधा बना भूला फिरा निज भूल से ॥

2. केश भीषण विकृत मुख नर मुण्ड धारी पिशाचगण,
भेजे दुख देने तुम्हें पर पाया उसने दुख गहन ॥

3. गर्जना कर दैत्य ने छोड़ी जो जल की धार थी,
स्वयं उसके डूबने को बन गई मझधार थी ॥

उस कमठ सुर ने जब पार्श्व प्रभु को डुबोने वास्ते जल बरसाया और पानी उनकी नाक तक पहुंचने लगा तब धरणेन्द्र और पद्मावती, वो नाग नागिन जिनको पार्श्व प्रभु ने बोध दिया था, आए। तब पद्मावती ने कमल पर बैठाकर तथा धरणेन्द्र ने सात फनों का छत्र बनाकर उस उपसर्ग को टाला था। भगवान् पार्श्वनाथ की महानता देखिए कि उन्हें न कमठ पर द्वेष आया और न देवयुगल पर राग। इस तथ्य को आचार्य हेमचन्द्र ने बड़ी सुन्दरता से प्रस्तुत किया है।

कमठे धरणेन्द्रे च स्वोचितं कर्म कुर्वति,
प्रभुस्तुल्यमनोवृत्तिः पार्श्वनाथः श्रियेस्तु वः ॥

अर्थात् कमठ अपना काम करता रहा, धरणेन्द्र अपना, पर प्रभु की मनोवृत्ति बराबर थी। ऐसे पार्श्वप्रभु ही संसार का सौन्दर्य बढ़ाते हैं।

इसके अलावा भी पार्श्वनाथ प्रभु ने देव, मनुष्य और तिर्यञ्चों के उपसर्गों को समता भाव से सहन किया तथा अपने घाती कर्मों को नष्ट किया। चैत्र बदी चतुर्थी को भगवान् को केवल ज्ञान, केवलदर्शन प्रकट हुआ और उनके चरणों में 8 गणधरों ने दीक्षा लेकर उनके संघ

को संचालित किया। उनके नाम थे। 1. शुभ्र 2. आर्यघोष 3. वशिष्ठ 4. ब्रह्मचारी 5. सोम 6. श्रीधर 7. वीरभद्र 8. यशोभद्र। वैसे उनके कुल साधु थे– 16 हजार, जिसमें आर्यदत्त प्रमुख थे, 38 हजार सतियाँ थी। प्रमुखा थी– पुष्प चूला। एक लाख 64 हजार श्रावक तथा 3 लाख 27 हजार श्राविकाएँ थी। उनके अन्य विशिष्ट मुनियों के बारे में आगम में लिखा है कि एक हजार केवली, ग्यारह सौ वैक्रिय लब्धिधारी, साढ़े सात सौ मनः पर्यायज्ञानी, साढे तीन सौ चौदह पूर्वी, 1400 अवधिज्ञानी थे तथा 1200 अनुत्तर विमान-गामी थे।

उनका निर्वाण सौ साल की आयु में सम्मेद शिखर पर सावन सुदी अष्टमी को हुआ था। उनके साथ 33 और केवलज्ञानी मोक्ष में गए। केवल ज्ञान होने के बाद तीर्थ-स्थापना के 3 साल बाद मोक्ष गमन प्रारम्भ हो गया था तथा 4 पीढ़ी तक मोक्ष चालू रहा। प्रभु पार्श्वनाथ की स्मृति में प्राचीन नवीन सभी भाषाओं में दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों आम्नायों में ढेर सारी स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं जिनके सम्बन्ध में यह माना जाता है कि उनसे सब प्रकार की आधि व्याधि नष्ट होती है।

उपसर्गहर स्तोत्र, कल्याण मन्दिर, किं कर्पूरमयं वाला चिन्तामणि स्तोत्र, कल्पबेल चिन्तामणि आदि मंगलकारी रचनाएँ प्रभु पार्श्व की भक्ति में बनी हैं।

ये भी इतिहासकारों की मान्यता है कि बौद्ध धर्म के प्रवर्तक सिद्धार्थ गौतम (महात्मा बुद्ध) ने पार्श्वनाथ की परम्परा में कुछ समय के लिए दीक्षा ली थी। तथा एक ये भी मान्यता है कि औघड़ बाबाओं की नाथ सम्प्रदाय में भी पार्श्वनाथ को आराध्य माना गया है।

भजनः–

तर्जः– तुमसे लागी लगन-

पार्श्व जिनवर के गुण, प्रेम श्रद्धा से सुन,
गुनगानाएँ मस्त हो अपना मस्तक झुकाएँ।
दूर जाना नहीं, मन के मन्दिर में ही लौ लगाएँ ॥टेक॥

1. रोग हो शोक हो या कलह हो,
कोई भी दुख कितना असह हो,
पार्श्व के ध्यान से, अमृत के पान से, उपशमाएँ ॥

2. भागे चिन्ताएँ अन्तः करण की,
सब व्यथा जन्म की और मरण की,
छेड़ें मीठी ध्वनि, पार्श्व चिन्तामणि, को मनाएँ ॥

पार्श्वनाथ प्रभु का निर्वाण भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण से 250 वर्ष पूर्व हुआ था। पार्श्वनाथ प्रभु की पृष्ठ भूमि में भगवान् अरिष्टनेमि का चित्र सजा हुआ है। उस चित्र में करुणा और वैराग्य के गहरे रंग भरे हुए हैं। भगवान् अरिष्ट नेमि ने आहार शुद्धि, जीव रक्षा का जो अभियान चलाया था वह आज भी धर्मप्राण प्रजा में गतिमान् है। भगवान् अरिष्टनेमि उस यादव वंश के कुलदीपक थे जिसमें श्री कृष्ण सरीखे कर्मयोगी ने भी जन्म लिया। श्री कृष्णजी भगवान् अरिष्टनेमि के चचेरे भाई थे। कर्म और धर्म दोनों धुराओं को धारण करने वाले दोनों युग पुरुषों ने तत्कालीन प्रजा को वैभव के प्रकर्ष पर पहुँचाया।

प्रभु अरिष्टनेमि के पांचों कल्याणक चित्रा नक्षत्र में सम्पन्न हुए थे तथा उनका जन्म शौर्यपुर के महाराजा समुद्रविजय की रानी शिवादेवी की गोद से हुआ था। उनका पूर्वभव 25वें देवलोक में देव के रूप में था। कार्तिक बदी द्वादशी को उनका च्यवन हुआ था तथा सावन सुदी पंचमी को प्रभु का जन्म हुआ था। अरिष्टनेमि का शरीर-सौन्दर्य अनुपम था, यौवनवय आने पर भी उनमें भोग वासना का जागरण नहीं हुआ परन्तु श्री कृष्ण जी चाहते थे कि मेरे लाड़ले भाई का विवाह हो अतः काफी प्रयत्न करके उनसे अनुमति ली और जूनागढ के राजा उग्रसैन की पुत्री राजीमती के साथ उनकी सगाई कर दी। बारात सज गई। चतुरंगिणी सेना से घिरे गंधहस्ती पर विराजमान दुल्हे राजा के रूप में अरिष्टनेमि राजुल को ब्याहने चल दिए। जब उनकी सवारी जूनागढ के निकट पहुंची तो उन्होंने बाड़ों में बंधे पशु पक्षियों के करुण क्रन्दन को सुना तथा उनकी निरीह अवस्था को देखा, उनका हृदय करुणा से

भर गया, उन्होंने सारथि से पूछा कि ये भद्रप्राणी यहाँ इस तरह क्यों बंधे हुए हैं। उसने बताया– युवराज! आपकी बारात में आए कुछ मेहमानों के भोजन के लिए इन्हें मारा जाना है, इसलिए ये यहाँ बंधे हुए कुरला रहे हैं। अरिष्टनेमि को बड़ा गहरा धक्का लगा, सोचने लगे कि क्या ये ही मानवीयता है कि अपनी खुशी के लिए या स्वाद के लिए मूक पशुओं का वध कर दिया जाए।

खंजर चले किसी पे तड़पते हैं हम 'अमीर'।
सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर में है।

प्रभु तो दया को ही जीवन-सार मानते थे और आज अपने सामने दया का वध हो रहा था, ये उन्हें कहाँ सह्य था।

1. **अगर तेरे दिल में दया ही नहीं।**
   तो समझ ले तुझे दिल मिला ही नहीं ॥

2. **दया नहीं तो फिर क्या है, धर्म कर्म सब मिथ्या है।**
   ये जीवन-भवन है सूना, सूनी जीवन की बगिया है ॥

प्रभु अरिष्टनेमि ने दुल्हे की वेषभूषा उतार दी तथा आभूषण सारथि को दे दिये, प्राणियों को मुक्त किया और वापिस मुड़ गए। वातावरण में अवसाद छा गया। राजीमती मूर्च्छित हो गई पर भगवान् ने तो अब अपना रास्ता ही बदल लिया था। राजीमती ने भी प्रभु के मार्ग पर ही चलने का संकल्प कर लिया।

युग परिवर्तन की एक नूतन लहर चली। प्रजा में माँसाहार से घृणा का भाव उभरा तथा अध्यात्म रसिक व्यक्तियों में वैराग्य जागा। प्रभु अरिष्टनेमि ने एक वर्ष तक वर्षीदान दिया। लोकान्तिक देव आए और सावन सुदी छट्ठ के दिन एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा अंगीकार की। उस दिन भगवान् का बेला था।

अब एक तथ्य जान लेना जरूरी है कि जैनकाल गणना में समय की लम्बी-2 अवधियों का वर्णन मिलता है। भगवान् महावीर तथा पार्श्वनाथ दोनों की उम्र और अन्तराल बिल्कुल साधारण से है। जैसे भगवान् महावीर की आयु 72 वर्ष तथा भगवान् पार्श्वनाथ की सौ वर्ष है और दोनों का अन्तराल भी 250 वर्ष का है। परन्तु उससे पीछे जाते जाएँगे तो आयु की सीमा और बीच का अन्तराल बढता ही जाएगा, जैसे कि अरिष्टनेमि प्रभु की कुल आयु 1000 वर्ष की मानी है तथा महावीर प्रभु और उनके बीच का अन्तराल 85 हजार वर्ष का था। इन आँकड़ों को हम श्रद्धा की तुला पर तोलकर स्वीकार करेगें। इसीलिए कल्पसूत्रकार ने लिखा है कि भगवान् अरिष्टनेमि ने 300 वर्ष की आयु में दीक्षा ली थी। 54 दिन उनका छद्मस्थ काल रहा तदनुसार आसोज की अमावस्या के दिन उन्हें तेले तप में केवल ज्ञान प्रकट हुआ।

उधर राजमती ने भी भगवान् का अनुसरण करते हुए साध्वी जीवन ग्रहण किया। इस प्रकार दोनों महान् आत्माओं ने 9 भवों के प्रेम को बहुत ऊंचा दर्जा दिया। राजीमती को एक वर्ष की साधना के बाद केवल ज्ञान प्राप्त हुआ।

भगवान् अरिष्टनेमि ने केवल ज्ञान के बाद तीर्थ धर्म की स्थापना की। उनके 18 गण और गणधर हुए, 18 हजार साधु, 44 हजार सतियाँ बनी, एक लाख 64 हजार श्रावक 3 लाख 36 हजार श्राविकाएं हुई। 400 चौदह पूर्वी, 1500 केवली और इतने ही वैक्रिय लब्धिधारी हुए। एक हजार मनः पर्याय ज्ञानी, 800 वादी, 1600 अनुत्तर विमान गामी बने। 15 सौ साधु 3 हजार सतियाँ मोक्ष में गई।

भगवान् अरिष्टनेमि के सम्बन्ध में हमने अन्तकृत् दशांग में भी बहुत कुछ सुना है। उन्होंने भारतीय संस्कृति को नया रूप प्रदान किया था। उस युगान्तर कारी तीर्थंकर देव का आषाढ सुदी अष्टमी के दिन 536 साधुओं के साथ उज्जयन्त पर्वत (गिरनार) पर अर्धरात्री के समय निर्वाण हुआ था। उन्हें कैवल्य प्राप्त हुआ उसके दो वर्ष बाद मोक्षगमन प्रारम्भ हुआ और 8 पीढियों तक मोक्ष गमन की परम्परा बनी रही।

कल्पसूत्र के रचयिता श्रुत केवली श्री भद्रबाहु ने इन तीन तीर्थंकरों का कुछ-2 चित्रण करके ऋषभदेव के अलावा शेष 20 तीर्थंकरों का परिचय न देकर केवल एक तीर्थंकर से अन्तिम तीर्थंकर के बीच कितना अन्तराल रहा है इसकी सूचना ही दी है। जैसे कि नमि और अरिष्टनेमि के बीच का काल 5 लाख वर्ष था। उनसे मुनिसुव्रत 6 लाख वर्ष पूर्व हुए तथा महावीर से 11 लाख वर्ष पूर्व। और जैन ग्रन्थों के अनुसार इनके युग में ही रामचन्द्र, लक्ष्मण जैसे प्रतापी राजा हुए थे।

मल्लीनाथ 65 लाख वर्ष पूर्व हुए। उनके सम्बन्ध में ज्ञाता धर्मकथांग में विस्तृत परिचय मिलता है पर यहाँ केवल इतना ही बताना पर्याप्त रहेगा कि श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार ये एक महान् नारी थी। दिगम्बर इन्हें पुरुष कहते हैं।

अरनाथ एक हजार करोड़ वर्ष पूर्व हुए। इसके बाद का अन्तराल पल्योपम और सागरोपमों में दिया गया है। जो अलग-2 ढंग से असंख्यात के वाचक शब्द हैं जैसे कि कुन्थु जी ¼ पल्योपम पहले हुए, शान्तिनाथ जी ½ पल्योपम पहले, शान्ति-कुन्थु-अरनाथ ये तीनों तीर्थंकर चक्रवर्ती का पद भोगकर दीक्षा लेने वाले महापुरुष थे।

धर्मनाथ जी 3 सागरोपम पूर्व, अनन्त नाथ जी 7 सागरोपम पूर्व, विमल जी 16, श्रेयांसजी सौ सागर पूर्व हुए थे। शीतल जी एक करोड़ सागर पूर्व हुए तो सुविधिनाथ जी 10 करोड़ सागर पूर्व हुए। चन्द्रप्रभु सौ करोड़ सागर पूर्व तो सुपार्श्वनाथ हजार करोड़ सागर पहले हुए। पद्मप्रभु जी 10 हजार करोड़, सुमति जी एक लाख करोड़ पूर्व हुए। अभिनन्दन जी 10 लाख करोड़ पूर्व, संभव जी 20 लाख करोड़ पूर्व तथा अजित नाथ जी 50 लाख करोड़ पूर्व हुए। इस प्रकार 20 तीर्थंकरो की इतनी मात्र जानकारी देकर आगम में प्रभु ऋषभदेव का परिचय प्रारम्भ किया है। यहाँ यह बात ध्यान में देने लायक है कि इन तीर्थंकरों में भी कुछ ही तीर्थंकरों के बारे में जनमानस को जानकारी है। चन्द्रप्रभु भगवान् का नाम तब से अधिक जानकारी में आया है जबसे 'तिजारा' तीर्थ की मान्यता बढी है। शान्तिनाथ भगवान् अपनी शान्ति की वजह

से विख्यात हैं, उन्होंने पूर्व भव में कबूतर की रक्षा के लिए अपना शरीर दान कर दिया था। तथा तीर्थंकर के भव में महामारी को दूर करने में उनकी कृपा रही थी। श्री मल्ली जी की चर्चा इसलिए ज्यादा रही क्योंकि जैनो की दोनों सम्प्रदायों में उनके स्वरूप के सम्बन्ध में विरोधी मान्यताएँ रही हैं। मुनिसुव्रत भगवान् को रामचन्द्रजी की समकालीनता के कारण चर्चित कर लिया जाता है। हाँ, अन्तिम तीन तीर्थंकर अपनी ऐतिहासिकता की वजह से ही सर्वज्ञात हैं।

आओ, हम भगवान् ऋषभदेव आदिनाथ को वन्दना कर लें। भक्तामर स्तोत्र के प्रारम्भ में आचार्य मानतुंग जी ने लिखा हैः—

भक्तिनत देवों के मुकुटों से भी अधिक सुहावने।
कर्मयुग की आदि में अवलम्ब जन-2 के बने ॥

आदि जिन के उन पदों में वन्दना कर भक्ति से।
देवेन्द्र स्तुत की स्तुति करुं निज तुच्छ प्रतिभा शक्ति से ॥

प्रभु ऋषभदेव का आगमन उस युग-सन्धि की वेला में हुआ था जब प्राकृतिक सम्पदाएँ सिमट रही थी। मानवीय उत्थान की पुरुषार्थमयी कहानी लिखी जानी थी। भोग काल लुप्त हो रहा था। कर्म काल का आविर्भाव होने जा रहा था। संत्रस्त सा मानव मन अनिर्णय, अविश्वास एवं भविष्य के प्रति गहरे सन्देह की स्थिति में था। उस समय उत्तराषाढा नक्षत्र में जिसमें एक अंश अभिजित् का भी सम्मिलित था अन्तिम कुलकर नाभिराय की सहचारिणी मरुदेवी की कुक्षि में आषाढ सुदी चतुर्थी को 26वे देवलोक से ऋषभ देव जी का अवतरण हुआ था। उन्होंने लगभग 12 भव पहले महाविदेह क्षेत्र में सम्यक्त्व का बीज ग्रहण किया था। मरुदेवी ने 14 स्वप्नों में पहला स्वप्न हाथी के बजाय बैल का देखा। स्वप्नों का शुभ फल नाभि कुलकर ने स्पष्ट किया। सवा नौ माह के बाद चैत्र बदी अष्टमी को प्रभु का जन्म हुआ।

तब तक सभ्यता संस्कृति, नगर ग्राम आदि की कोई व्यवस्था ही नहीं बनी थी अतः मानवकृत उत्सवों की कोई सम्भावना नहीं थी पर

देवों ने अपनी परम्परा के अनुसार सब कार्य सम्पन्न किए। उस युग ने धीरे-2 प्रभु की कृपा से ही सब कुछ प्राप्त किया। अतः ऋषभदेव भगवान् ही पहले राजा, पहले साधु, पहले केवल ज्ञानी और पहले तीर्थ निर्माता-तीर्थंकर कहलाए। उनकी माता ने स्वप्न में पहले बैल अर्थात् ऋषभ को देखा था अतः उनका नाम ऋषभ रखा गया था।

राज्य व्यवस्था की नींव भी श्री ऋषभदेव ने रखी। कुलकर-युग में अपराधी लोगों को पहले हाकार नीति से, फिर माकार तथा बाद में धिक्कार नीति से संभाला जाता था। मगर युग परिवर्तन की विकट स्थिति में ये नीतियाँ कारगर नहीं रही थी, तब प्रभु ने राजनीति का सूत्रपात किया। विवाह की परम्परा का सूत्रपात भी प्रभु की देन है। उन्होंने जिस नगरी में रहकर सम्पूर्ण इलाके की व्यवस्था संभाली वह नगरी अयोध्या, विनीता, अवधभूमि या इक्ष्वाकुभूमि के रूप में इतिहास प्रसिद्ध हुई।

तत्कालीन मानव को उन्होंने पेट भरने के लिए कृषि का सम्बल दिया। धरती की उपजाऊ शक्ति ने मानव को अन्न से भरपूर कर दिया। पर लोग बेचारे अन्न पकाना भी नहीं जानते थे तब प्रभु ने उन्हें बर्तन बनाना और बर्तनों में अन्न को डालकर अग्नि पर पकाने का विज्ञान सिखाया। असि-मषि-कृषि की शिक्षा देकर राष्ट्र सुरक्षा, व्यापारिक कला तथा अन्नोत्पादन का रास्ता खोला। पुरुषों की 72 तथा स्त्रियों की 64 कलाओं के अलावा सौ प्रकार के शिल्प भी प्रभु ऋषभ देव ने ही लोगों को सिखाए।

अपनी पुत्री ब्राह्मी को प्रभु ने लिपि सिखाई जो विश्व की पहली लिपि के रूप में विश्व में आज भी मान्य है। सुन्दरी को गणित की विद्या देकर विज्ञान एवं विश्व-विकास की भूमिका कायम की। नाप-तोल के स्टैण्डर्ड कायम किए, इस प्रकार प्रभु ने अपने गृहस्थ काल में मानव जाति के लिए उन्नति का रास्ता खोला। मानव ने कर्म अर्थात् अपने भरण-पोषण और गुजारे के लिए काम का, मेहनत का, पुरुषार्थ का सहारा लिया।

84 लाख पूर्व की कुल आयु में 20 लाख पूर्व तो उनके कुमारावस्था में ही गुजर गए अर्थात् राज्य सम्बन्धी कोई जिम्मेवारी नहीं ली। उसके बाद 63 लाख पूर्व तक राज्य संचालन करते रहे। पर मानव जाति को वे अध्यात्म की ओर भी मोड़ना चाहते थे, उन्हें पता था कि केवल भौतिक समृद्धि से मानव मन की तृप्ति नहीं हो सकती। जब वह अध्यात्म की डगर पर चलेगा तभी उसका जन्म व जीवन सार्थक होगा, आत्मा की जन्म व मरण से सुरक्षा हो सकेगी तथा सृष्टि के सौन्दर्य में भी श्री वृद्धि होगी। वे परा और अपरा दोनों विद्याओं से युगोपकार करना चाहते थे, उनके सम्बन्ध में लिखा है।

तर्जः– वो दिल कहाँ से लाऊँ

श्री आदिदेव भगवान् शिवपथ दिखाने आए,
भव्यों का भवभ्रमण से पीछा छुड़ाने आए ॥टेक॥

1. आपस में प्यार करना सबको ही था सिखाया,
   हक सबका है बराबर सबको बताने आए ॥

2. अज्ञान घन-घटाएँ सब ओर छा रही थी,
   वे ज्ञान सूर्य बनकर भ्रम को मिटाने आए ॥

3. जब अर्थ-लोभ में आ लड़ता था कोई कहीं भी,
   वो त्याग मार्ग पर ला सुमति सुझाने आए ॥

4. पथ धर्म कर्म दोनों का स्पष्टतः बताकर,
   सुख और श्रेय सबको क्रमशः दिलाने आए ॥

5. बनकर अहिंसा संयम तप की मिसाल ऊंची,
   वो धर्म तीर्थ नूतन पावन बनाने आए ॥

संसार को हर प्रकार से खुशहाल करके भगवान् अब ऐसा महान् कार्य करने जा रहे थे जिसके लिए लगभग 18 कोटाकोटि सागरोपम काल से मानव जाति प्रतीक्षा रत थी, वह था संयम धर्म की स्वीकृति

और तीर्थ धर्म की स्थापना। संयम की भूमिका बनाते हुए पहले उन्होंने भरत बाहुबलि आदि सौ भाइयों को दक्षिणार्ध भरत के अलग-2 इलाके प्रशासन व्यवस्था संभालने के लिए दे दिए। तभी लोकान्तिक देवों ने अपना कर्त्तव्य निभाया और प्रभु से प्रार्थना की कि हे प्रभु दीक्षा ग्रहण करें। भगवान् तैयार थे बस एक वर्ष तक दान देकर चैत्र बदी अष्टमी को दीक्षा ली। जब वे विनीता नगरी के बाहर सिद्धार्थ वन में पधारे और पञ्चमुष्टि लोच करने लगे तब इन्द्र म. ने विनति की— हे भगवन्, आप एक मुष्टि प्रमाण केशों को अपने सिर पर ही रहने दें तो भगवान् ने 4 मुष्ठि ही लोच किया।

उनके साथ करीब 4 हजार आदमी, जो प्रभु के बहुत प्यारे थे तथा उच्च पदों पर आसीन थे, भी मुनि बन गए थे, यद्यपि उन्हें संयम का वास्तविक स्वरूप ज्ञात नहीं था पर भगवान् का अनुकरण करना अपना कर्त्तव्य समझकर वे दीक्षित हो गए। पर उनकी दीक्षा उन्हीं के लिए जी का जंजाल बन गई। प्रभु ऋषभदेव तो मौन और ध्यान में चले गए थे और इन्हें धर्म साधना की विधियों का कुछ ज्ञान नहीं था। शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति भी करनी थी, भोजन की व्यवस्था कौन करे, मन उकता गया, वापिस घर जाने में संकोच था, अतः वे अपनी-2 सोच के मुताबिक अलग-2 तरह की संन्यास विधियों को अपनाने लगे और कुटीर आदि बनाकर रहने लगे।

प्रभु ऋषभदेव भी पारणे के लिए ग्रामानुग्राम घर-2 घूमें, उन्हें सर्वत्र आदर मिला, कन्याओं, रत्नों, वाहनों की भेंट मिली पर आहार पानी की किसी ने विनति नहीं की। कोई सोच ही नहीं सकता था कि इन्होंने आहार नहीं किया होगा? आहार-दान की धारणा उस युग तक प्रचलित नहीं हुई थी। एक वर्ष से अधिक का समय गुजर गया पर प्रभु को आहार पानी नहीं मिला।

भगवान् हस्तिनापुर पधारे, बाहुबली के पौत्र तथा सोमप्रभ के पुत्र श्रेयांस कुमार को भगवान् के दर्शन करते ही जातिस्मरण ज्ञान हो गया और वहाँ उपलब्ध निर्दोष इक्षुरस प्रभु को पारणे में बहराया। वैशाख

शुक्ल तृतीया का वह दिन 'अक्षय तृतीया' के रूप में विश्व में अमर हो गया। इसे 'इक्षु तृतीया' भी कहा जाता है।

भगवान् ऋषभदेव को एक हजार वर्ष की कठिन साधना के पश्चात् फाल्गुन वदी एकादशी को पुरिमताल नगर के बाहर शकटमुख, बाग में, बड़ के पेड़ के नीचे, केवल ज्ञान हुआ और आनन्द दायक घटना ये हुई कि तीर्थ स्थापना के मंगल मय क्षण से पूर्व ही भगवान् ऋषभदेव की माता मरुदेवी को केवल ज्ञान और निर्वाण प्राप्त हो गया। वह अत्यन्त निर्मल भावों में रहने वाली कषाय मुक्त आत्मा थी, बस केवल अपने पुत्र ऋषभदेव से हल्का-सा राग भाव था अन्यथा वह संसार में रहकर भी संसार से विमुक्त थी। जल में कमल की तरह उसका स्वभाव था। उसने कई बार भरत को ये उपालम्भ दिया था कि तू अपने पिता श्री को भूल गया है, तुझे अपने राज्य की ही चिन्ता रहती है। भरत जी भी प्रभु के दर्शन करना चाहते थे पर प्रभु का क्या पता कब कहाँ मिले? अन्ततः जब भरत जी को ज्ञात हुआ कि श्री ऋषभ देव प्रभु नगर से बाहर पधारे हुए हैं। उसने अपनी दादी से कहा– 'दादी माँ' पूज्य पिता श्री ऋषभदेव का पुरिमताल के बाहर पदार्पण हुआ है अतः आप चलिए उनके दर्शन कीजिए। मरुदेवी माँ भावविभोर हो गई, हाथी के हौदे पर बैठकर अपने पुत्र से मिलने चली। ज्यों ही वह प्रभु के निकट पहुंची, प्रभु की वीतराग अवस्था देखकर उसका राग-भाव भी छिन्न भिन्न हो गया। और हाथी पर बैठे-2 ही केवल ज्ञान प्रकट हो गया। तथा तुरन्त ही कच्चे धागे के समान जुड़े हुए आयुष् कर्म के परमाणु भी क्षीण हो गए। सम्पूर्ण घाती-अघाती कर्मों को खत्म कर वह आत्मा मोक्ष में पधारी।

भगवान् ऋषभदेव ने भी चतुर्विध तीर्थ की स्थापना करके धर्म का मंगल-मुहूर्त कर दिया। कितना भव्य एवं पावन समय था वह, जब युगों-2 से धर्म विहीन धरती को चारित्र धर्म का अवलम्ब मिला। हर पहलू से सतृंप्त मनुजता के सामने भौतिक समृद्धि से उत्पन्न व्याकुलता का समाधान धर्म के अलावा और क्या हो सकता था?

तीर्थ प्रवर्तन के समय भरत जी के पुत्र 'ऋषभ सेन' गणधर घोषित हुए, ब्राह्मी भी दीक्षित हुई। भरत ने 12 व्रत लेकर श्रावक धर्म की बुनियाद रखी तो सुन्दरी को भी श्रावक-व्रत दिलाए। यद्यपि सुन्दरी साध्वी बनना चाहती थी पर भरत जी अपना राग भाव नहीं छोड़ पाए। भरत तो दिग्विजय यात्रा पर चले गए पर सुन्दरी ने आयम्बिल तप प्रारम्भ कर दिया। जब दीर्घकाल के बाद भरत जी घर लौटे और सुन्दरी के दुर्बल देह को देखा तो पूछा कि इतनी दुर्बल क्यों है, पता चला कि ये तो तपस्या में लगी हुई है। भरत जी को काफी अफसोस हुआ और उन्होंने सुन्दरी को साध्वी बनने की अनुमति दे दी। और वह प्रभु चरणों में दीक्षित होकर कृतार्थ हो गई।

समग्र भरत क्षेत्र को एक शासन सूत्र में पिरोने के लक्ष्य से भरत जी ने चक्रवर्ती की हैसियत से दिग्विजय अभियान चलाया था। उसे सर्वत्र विजय हासिल हुई पर जब वापिस अपने घर की ओर लौटा तो घरेलू संकट खड़ा हो गया। 99 भाईयों में से कोई भी भरत की आज्ञा मानने के लिए तैयार नहीं हुआ। सभी अपने-2 राज्य खण्डों को स्वतन्त्र रूप से सञ्चालित करने के मूड में थे। भरत जी उनकी जमीन और अधिकारों को हड़पना नहीं चाहते थे, उनका लक्ष्य तो इतना मात्र था कि कर्मयुग का उगता हुआ प्रभात है ऐसे मौके पर यदि अच्छी परम्परा स्थापित हो जाएगी तो आने वाला वक्त देश, राष्ट्र एवं समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा। एक संविधान एक ध्वज एक सम्राट् के नीचे सभी राज्य इकाईयाँ कार्य करेगी तो समग्र देश अखण्ड होकर प्रगति की ओर प्रयाण करता रहेगा। यदि हर छोटा-2 राज्याधीश अपनी स्वतन्त्र व्यवस्था को कायम रखेगा तो पारस्परिक समन्वय नहीं सध सकेगा और सभी राज्य एक दूसरे के प्रति शत्रुता पूर्ण रवैय्या अपनाते रहेगें। केन्द्रीय व्यवस्था के अभाव में जागीरदारी प्रथा ही पनपेगी और निरंकुशता का बोलबाला रहेगा।

भरतक्षेत्र के छहों खण्ड— उत्तर और दक्षिण वाले— एक व्यवस्था को मानने को तैयार थे पर बाहुबली तथा शेष 98 भाई नहीं। भरत

जी ने युग की पुकार को समझते हुए अपने भाईयों को कठोर होकर कहना पड़ा कि या तो स्वेच्छा से बृहद् व्यवस्था में शामिल हो जाओ वर्ना दुष्परिणाम भोगने के लिए तैयार हो जाओ। मैं राष्ट्र के भविष्य को आपकी स्वेच्छाचारिता-स्वच्छन्दता के आगे बलि नहीं चढने दूंगा।

बाहुबली को छोड़कर शेष 98 भाईयों ने संयुक्त फैंसला किया कि हम भगवान् ऋषभदेव की आज्ञा से राजा बने हैं। वे हमारे पिता हैं, जैसा वे कहेंगे हम कर लेंगे। जब वे भगवान् के चरणों में गए और अपनी समस्या सामने रखी तब भगवान् ने फरमाया कि क्यों नश्वर राज्य के लोभ में जीवन को बरबाद कर रहे हो। भगवान् की भावना को भजन या कविता के माध्यम से प्रस्तुत करेंगे–

तर्जः–ऐ मेरे दिल नादा..

कोई छीन नहीं सकता वो सिंहासन दूंगा,
कोई बाँट नहीं सकता तुम्हें ऐसा धन दूंगा ॥टेक॥

तलवारों के बल पर धरती हथियाते हैं,
तलवारों के जरिए वही मारे जाते हैं।
नहीं खून किसी का हो वो समरांगण दूंगा,
कोई छीन नहीं सकता वो सिंहासन दूंगा ॥

कितने ही बना लो घर आखिर ढह जाएँगे,
और वक्त की रौ में सब इक दिन बह जांएगे।
जो बनकर ढहे नहीं वो मोक्ष भवन दूंगा,
कोई छीन नहीं सकता वो सिंहासन दूंगा ॥

भाइयों के रिश्ते में स्वार्थों की गन्ध बसी,
आस्तीन के सांपों ने छाती है सदा डसी।
मुनिमण्डल में आओ प्रिय स्वजन तुम्हें दूंगा,
कोई छीन नहीं सकता वो सिंहासन दूंगा ॥

मृत्यु के पहरे में ये जीवन पलता है,
शाश्वतता के छल से नर खुद को छलता है।
संयम ले लो यम से फिर संरक्षण दूंगा,
कोई छीन नहीं सकता वो सिंहासन दूंगा ॥

98 भाई प्रतिबोध पाकर मुनि बन गए, भरत की समस्या का अधिकांश समाधान हो गया पर बाहुबलि फिर अड़ गया। दोनों भाईयों का आपस में युद्ध हुआ, वह युद्ध सैन्य युद्ध न होकर दोनों के मध्य ही रहा। उसमें भी बाहुबली विजयी होता रहा अन्ततः मुष्टि युद्ध के आखिरी दौर में बाहुबली की सद्बुद्धि जागृत हुई और वह भी वनों की ओर चल दिया। भगवान् के पास दीक्षा इसलिए नहीं ली क्योंकि वहाँ जाने पर छोटे भाईयों को सिर झुकाना पड़ेगा। जब साल भर की कठिन तपस्या के बावजूद उसे ज्ञान प्रकट नहीं हुआ तब भगवान् ऋषभदेव ने ब्राह्मी सुन्दरी को भेजकर उसे प्रतिबोध दिया और बाहुबलि को कैवल्य प्रकट हुआ। हाँ, भरत जी भी राज्य पालते हुए वैरागी के रूप में ही रहे। उन्हें भी शीशमहल में केवल ज्ञान दर्शन प्राप्त हुआ।

इस तरह लाखों जीवों के उद्धारक प्रभु ऋषभदेव का धर्मचक्र घूमता रहा, जिसके तहत उनके 84 गणधर थे। 84 हजार साधु, 3 लाख सतियाँ, 3 लाख 5 हजार श्रावक तथा 5 लाख 54 हजार श्राविकाएँ थी, 4 हजार चौदहपूर्वी, 4 हजार अवधिज्ञानी तथा 20 हजार केवली थे, 20 हजार 600 वैक्रिय लब्धि वाले तथा 12,650 मनः पर्यायज्ञानी हुए और 12,650 ही वादी थे। 20 हजार साधु 40 हजार सतियाँ मोक्ष में गए। अनुत्तर विमान में जाने वाले 22,900 थे।

इस तरह प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान् के 84 लाख पूर्व आयु में 20 लाख पूर्व कुमारावस्था के 63 लाख पूर्व राज्यावस्था के, हजार वर्ष छद्मस्थता के तथा एक लाख पूर्व सर्वज्ञता के रहे। तीसरे आरे का समय जब 3 साल 9½ महीने शेष था तब प्रभु का अष्टापद पर्वत पर माह बदी तेरस को निर्वाण हुआ। दस हजार साधु उनके साथ मोक्ष

में गए। तब भगवान् 6 दिन से निराहार थे। ऋषभदेव के बाद एक कोटा-कोटी सागरोपम काल बीतने पर भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ था। ऋषभदेव प्रभु के केवलज्ञान के अन्तर्मुहूर्त बाद मोक्ष-गमन शुरू हो गया और असंख्यात पीढियों तक मोक्ष-गमन चालू रहा।

इस तरह हमने आपके सामने कल्पसूत्र के अनुसार तथा कुछ अन्य ग्रन्थों के आधार पर 23 तीर्थंकरों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी दी है। हम अत्यन्त पुण्यशाली हैं जो पर्यूषणों के पावन क्षणों को सफल बना रहे हैं। अब सम्वत्सरी के कुल 3 दिन शेष हैं। One -Two-Three — There is Samvatsri तेले करने के भाव रखें। जाप में बढ़-चढकर हिस्सा लें। सम्वत्सरी के दिन अपने प्रतिष्ठान बन्द रखने हैं तथा पौषध अवश्य करना है। आपका घनिष्ठ स्नेह पाकर हमारा मन अत्यन्त सन्तुष्ट है। अपने धर्मस्नेह की सौगात हमें देते रहें। इसी विनम्र निवेदन के साथः—

– जय जिनेन्द्र!

अन्य उपयोगी भजन

तर्जः— चले आ चले आ चले आ जहाँ प्यार मिले-

वन्दना वन्दना वन्दना भगवन् ऋषभदेव को,
भगवन आदि देव को... ॥टेक॥

1. इस युग में धर्म की लौ अब भी जो जल रही है,
   उनकी ही है बदौलत संस्कृति जो चल रही है ॥

2. असि विद्या से सिखाया दुर्बल जनों का रक्षण,
   मसी विद्या से सिखाया वाणिज्य और लेखन ॥

3. कृषि विद्या से जगत् में खेती की नींव डाली,
   हरियाली की धरा पर घर-2 में खुशहाली ॥

4. कन्याओं को भी शिक्षा का हक दिया बराबर,
शिल्पों की देके विधियाँ निधियों के खोले लॉकर (Locker) ॥

5. था बैल चिह्न तन का बैलों की की सुरक्षा,
पशुओं का माँस खाना बतलाया घोर हिंसा ॥

6. किया धर्म का प्रवर्तन बने आद्य तीर्थंकर थे,
ब्राह्मण श्रमण उभय के वे पूज्यतम शिखर थे ॥

भजनः–

तर्जः– गरीबों की सुनो...

दोहाः जूनागढ नगरी में सजे हैं तोरणद्वार।
उमड़ रहा है देखने दर्शक-पारावार ॥

सवारी आ रही है श्री नेम की सुहानी।
सूरज भी है शर्माया क्या सूरत है नूरानी ॥

1. बत्तख बगुले हंस व सारस बंधे-2 कुरलाते हैं,
कोयल चिड़िया तोता मैना रोते मन कल्पाते हैं,
सुनी नेम जी ने ज्यों ही आहो जारी,
वो करुणा से भर गए करूणा पुजारी,
कहा सारथि से ये क्या माजरा है,
तुम्हारे विवाह का ही ये सिलसिला है।
सुनते ही बस दुखित हुए हैं भीग गए वैराग में..

2. तोड़ दिया हाथों का कंगणा मोड़ भी तोड़ मरोड़ा है,
और सवारी को भी अपनी कहके वापिस मोड़ा है,
थी बाजों की धुन भी हुई बन्द सारी,
खबर सुनके सबको हुई बेकरारी,
नैनों से नीर बहाती है राजुल,

गई रूठ मैंहदी पुंछ गया काजल,
ढंग बना ये भंग पड़ गया तभी रंग और राग में...

3. नेम प्रभु ने संयम लेकर पाया केवल ज्ञान था,
तीर्थ चलाया संघ बनाया उदित हुआ एक भान था,
सुना जब ये राजीमती ने विचारा,
जहाँ है गया मेरा नेम पियारा,
उसी पथ पे मैं अपने चरण बढ़ाऊं,
ये जीवन सकल ही विमल मैं बनाऊं,
नौ भव का वो प्यार सफल था लग करके तप त्याग में...

छठा प्रवचन

भजनः–

तर्जः– मेरा दिल ये पुकारे आजा...

महावीर हुए निर्वाणी, गुरु गौतम केवल ज्ञानी,
फिर सुधर्मा आर्य जी बने पहले आचार्य जी-॥टेक॥

1. किया आत्म कल्याण, दिया ज्ञान दान था,
पूर्ण हुआ अवतार कृत्य का विधान था,
करती रही उपकार, बहती रही जलधार,
प्रभु वीर की मंगल वाणी...

2. गौतम इन्द्रभूति ज्ञान के प्रथम पात्र थे,
रहे चरणों में उपासीन अहोरात्र थे,
किया तप घनघोर, वीर वाणी को बटोर,
भावी पीढ़ियों पे की मेहरबानी...

3. श्री सुधर्मा जी ने धर्म का उठाया भार था,
शासन सूत्र को संभाला दिया तत्वसार था,
जम्बू जी को दिया ज्ञान, सौंपा रत्नों का निधान,
आगमों की निधि थी बचानी...

4. जम्बू जी ने ज्ञान ले के प्रभवा को दिया था,
अन्तिम केवली बने निर्वाण लिया था,
दश बोलों का विच्छेद, हुए संघ में प्रभेद,
थी ये पंचम काल की निशानी...

5. जैनाचार्यों की परम्परा रही विशाल है,
धर्म जीवित है कैसा ही विषम काल है,

नव्य भव्य फल फूल, मिलते समयानुकूल,
ऐसी गुरुओं ने की बागवानी...

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तथा अपने पूज्य गुरुदेवों को वन्दना करते हुए सभी भाई बहनों को जय जिनेन्द्र!

कितना आनन्द पूर्ण वातावरण है, जन-2 का मन धार्मिक उल्लास से ओतप्रोत है। क्यों न हो? पर्यूषण पर्व क्या रोज आते हैं? उनको मनाने का मौका क्या हरेक को मिलता है? कुछ पुण्यवान-अति पुण्यवान व्यक्ति ही इनके आराधन से धन्य होते हैं, ये अनमोल क्षण पाकर इन्हें व्यर्थ नहीं खोना है, लगातार 6 दिन से जिनवाणी का प्रवाह बह रहा है। दोनों समय हम महापुरूषों के जीवन चरित्र सुनकर ज्ञान दर्शन के साथ-2 चारित्र की वृद्धि कर रहे हैं। पहले चार दिन भगवान् महावीर का जीवन सुना। कल 23 तीर्थंकरों के विषय में संक्षिप्त व विस्तृत वर्णन सुना।

आज से हमें भगवान् महावीर के उत्तर कालीन इतिहास पर दृष्टिपात करना है। वर्तमान में जैन धर्म का जो भी स्वरूप है उसका मूल स्रोत तो प्रभु महावीर भगवान् ही हैं। पर बाद के आचार्यों ने भी अपनी-2 समझ और क्षमता के अनुसार उस निर्मल धारा को गति प्रदान की है। हमें अपने उन सभी आचार्यों को नमन करना है जिनकी बदौलत आज हम खड़े हुए हैं। जिस प्रकार देश भक्त अपने देश भारत की महिमा बखानते हैं, कुछ उन्हीं के शब्दों में हम अपने धर्म के बारे में कहना चाहेगें:—

हमारे दर की मिट्टी को जहाँ सर पर बिठाता था,
कोई सुरमां समझ करके आँखों में लगाता था।
पवित्र करते थे इसी से घरों को अहले-आलम सब,
तआरत में मुकद्दम दर्जा इसका समझा जाता था।
यही मिट्टी थी जो अक्सीर की तासीर रखती थी,
इसे आकर जो छूता था वो सोना बनके जाता था ॥

कल्पसूत्र में भगवान् महावीर के बाद देवर्द्धि गणी क्षमाश्रमण तक स्थविरावली का संक्षिप्त और विस्तृत दो पद्धतियों से वर्णन किया गया है। लगभग एक हजार साल के इतिहास को एक कैप्सूल में भरकर पेश करना आसान काम नहीं है, पर आचार्य भद्रबाहु ने वो ही कमाल करके दिखाया है। आओ, उनके कमाल का आनन्द लें।

जैसा कि भगवान् के प्रथम समवसरण की चर्चा में बताया था कि 11 परम विद्वान् ब्राह्मण पंडितों ने अपने-2 शिष्य समुदाय के साथ प्रभु चरणों में दीक्षा ली थी और प्रारम्भ के सात गणधरों ने अपने-2 मुनियों की वाचना का दायित्व स्वयं लिया था, जबकि 8वें तथा 9वें गणधर– अकम्पित और अचलभ्राता ने तथा 10वें और 11वें गणधर– मेतार्य और प्रभास ने संयुक्त वाचना दी थी। अतः 11 गणधरों के 9 गण बन गए थे।

जैसे-2 नूतन मुनिराजों की दीक्षाएँ होती गई वे सभी सुधर्मा स्वामी जी के नेतृत्व में ही चले। तथा भगवान् महावीर के केवलि काल में ही गौतम-सुधर्मा के अलावा 9 गणधर मुक्ति में पधार गए थे अतः उनके शिष्य भी श्री सुधर्मा स्वामी के गण के अन्तर्गत आ गए थे। सभी गणधर द्वादशांगी के धारक चौदह पूर्वों के पाठक थे। भगवान् के निर्वाण की रात्रि में ही श्री गौतम जी को केवल ज्ञान प्रकट हो गया था अतः वे प्रथम पद अरिहन्त के धारक बन गए । तीर्थंकरों के बाद आचार्य परम्परा का प्रचलन होता है, अतः श्री गौतम स्वामी आचार्य कैसे बनते वे तो पहले पद के स्वामी थे जबकि आचार्य पद छद्मस्थ को ही उदय में ही आता है। अरिहन्त को आचार्य बनाना उनका स्तर गिराने के समान है। अतः भगवान् महावीर के बाद श्री इन्द्रभूति गौतम के बजाय श्री सुधर्मा स्वामी ही आचार्य पद पर आरूढ हुए। वैसे भी 30 साल से श्री सुधर्मा स्वामी ही संघ का अधिकांश भार वहन कर रहे थे। श्री गौतम स्वामी तो भगवान् के सान्निध्य में ही बैठे रहते थे। ज्ञान राशि को ग्रहण करके उन्हें सूत्रबद्ध करते थे अतः स्वाभाविक ही था कि भगवान् महावीर की बागडोर श्री सुधर्मा

जी के हाथ में आती। आज सारा जैन सम्प्रदाय श्री सुधर्मा जी की ही सन्तान है, शेष गणधरों की नहीं।

श्री सुधर्मा स्वामी जी का जन्म कोल्लाक सन्निवेश में हुआ था। इनके पिता धम्मिल और माँ भद्दिला थी, अग्निवेश्यायन इनका गोत्र था। 50 साल की उम्र में दीक्षा लेकर भगवान् की सेवा में जुट गए थे। भगवान् के निर्वाण के 12 साल बाद केवली बने अर्थात् 42 साल तक छद्मस्थ मुनि रहे और 8 साल तक केवली बनकर रहे।

उनके चरणों में प्रव्रजित होने तथा उनके संघ की कमान को संभालने वाले श्री जम्बू स्वामी जी का जीवन चरित्र एक मनोहारी वैराग्य प्रतिमा की मानिन्द था। राजगृह के धनाढ्य सेठ ऋषभदत्त-सेठानी धारिणी का लाडला जम्बू 16 साल की उम्र में पहुंचा तो 8 कन्याओं के साथ उनकी सगाई हो गई। परन्तु श्री सुधर्मा स्वामी की वाणी सुनी तो वैराग्य से भीग गये। दीक्षा की भावना बनी, परिवार वालों को बताया तो वे सकते में आ गए। जब उनकी मंगेतरों को ज्ञात हुआ तो उन्होंने कहलवा दिया कि एक बार विवाह की रस्म पूरी कर लो, फिर देख लेना। इधर जम्बू जी को अपने वैराग्य भाव पर, उधर उनकी वाग्दत्ताओं को अपने राग रंग पूर्ण सौन्दर्य पर अटूट विश्वास था अतः विवाह हो गया। 99 क्रोड़ धन जम्बू जी को परिवार पोषण के लिए मिला। उस धन को लूटने के लिए प्रभव नामक चोर अपने 500 साथियों के साथ जम्बू जी के रंगमहल में घुस गया। 8 नव विवाहिता पत्नियाँ अपने काम-शरों से उस वैरागी मन को बींधने लगी, पर उनके तरकश का हर तीर बेकार हो गया। उल्टे जम्बू जी के उद्बोधन से वे सौन्दर्य-प्रतिमाएँ ही दीक्षा के लिए उद्यत हो गई। इतना ही नहीं, धन लूटने के लिए आया प्रभव चोर भी अपने साथियों सहित प्रबुद्ध हो गया। फिर क्या था? जम्बू के माता पिता, उसकी 8 पत्नियों के माता-पिता, 500 चोर, इस तरह 527 वैराग्यात्माओं का काफिला श्री सुधर्मा जी के चरणों में हाजिर हुआ तो भारत भर में तहलका मच गया। भगवान् महावीर के निर्वाण के पहले साल ही

जिनशासन की यह उपलब्धि इतिहास की अनमोल धरोहर बन गई। जम्बू जी ने अपने गुरुदेव से समग्र जिनागम को ग्रहण करके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

आगमों में सबसे पहले वर्णन आता है कि सुधर्मा जी के चरणों में जम्बू जी बैठकर पूछते हैं कि प्रभु! आपने मुझे पूर्ववर्ती आगम सुनाया, अब अगला आगम सुनाइए! तब सुधर्मा जी कहते हैं "एवं खलु जम्बू"। जम्बू जी ने सारी ज्ञान राशि को अपनी बुद्धि प्रकोष्ठ में स्थापित किया और जीवन में क्रियान्वित भी किया। 12 साल की दीक्षा के बाद इन्हें संघ का दायित्व प्राप्त हुआ। क्योंकि 12 साल बाद श्री सुधर्मा जी को केवल ज्ञान हो गया था। फिर आठ साल बाद स्वयं भी (जम्बू जी) केवल ज्ञानी हो गए। ये ही अंतिम केवली हुए। 80 साल की उम्र में जब इनका निर्वाण हुआ तब यह भरत क्षेत्र और यह पंचम काल वास्तव में अनाथ हो गया था। क्योंकि इनके साथ ही दस महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ लुप्त हो गई— 1 मनः पर्याय ज्ञान 2 परमावधिक ज्ञान 3 पुलाक लब्धि 4 आहारक शरीर 5 क्षपक श्रेणी 6 उपशम श्रेणी 7 जिनकल्प 8 तीन अंतिम चारित्र 9 केवल ज्ञान 10 सिद्ध पद।

जम्बू जी के बाद शासन का दायित्व प्रभव जी के कन्धों पर आया था। यद्यपि ये क्षत्रिय-पुत्र थे पर पारिवारिक कलह से संत्रस्त हो घर से भाग गए थे। डाकू बने पर जम्बू जी के संपर्क से वैराग्य का मार्ग अपनाया था। दीक्षा के 20वें साल में आचार्य बने और 105 वर्ष की आयु में देवलोक में गए। श्री प्रभव जी अपने संध्याकाल तक ये निर्णय नहीं कर पाए कि अपना उत्तराधिकार किसको दूं। संघ में कोई भी मुनिराज उन्हें इतना सक्षम प्रतीत नहीं हुआ तो उन्होंने उपयोग लगाया कि यदि राजगृह का वत्सगोत्रीय वैदिक विद्वान् शय्यंभव दीक्षा लेवे तो वह आगम निधि को संभाल भी सकता है तथा आगे भी बढ़ा सकता है। दो मुनियों को भेज उन्हें पास बुलाया और धर्म का सच्चा स्वरूप समझाया। उस भावुक युवक ने तुरन्त मुनि बनने का निर्णय ले लिया। उनका यह निर्णय एक दूसरे पहलू से और भी विस्मयकारी था। क्योंकि

उनका कुछ दिन पूर्व ही विवाह हुआ था और उनकी पत्नी गर्भवती थी। फिर भी उसका राग वैराग्य को दबा नहीं सका।

बनकर पतंग धर्म की लौ पर जो जल गए।
दुनिया की आग से वही बचकर निकल गए ॥

बाधाएँ रोक सकती हैं चलते हुए उन्हें,
अणुमात्र भी भरोसा नहीं अपने पर जिन्हें,
हिम्मत से चलने वाले उन्हें भी कुचल गए ॥

जब मन में आ गई हमें चलना जरूर है,
कैलाश का शिखर भी कहो फिर क्या दूर है,
दूरी को देखकर ही दुर्बल दहल गए ॥

वैभव में पलने वाले वैभव को छोड़कर,
दिल में लगी तो निकले सब सम्बन्ध तोड़कर,
फूलों पर चलते-2 वे कांटों पर चल गए ॥

शय्यंभव ने गुरुदेव की आशा को पूर्ण किया। सकल आगम सिन्धु को अपनी ओक से पी लिया। संघ का भार संभाला। उनके मुनि बनने के बाद उत्पन्न हुआ, उनका पुत्र मणक छोटी आयु में ही उनके पास आकर प्रव्रजित हो गया। पर जिन्दगी थोड़ी पाई। उस बालक मुनि को संयम में परिपक्व बनाने वास्ते आचार्य शय्यंभव ने दशवैकालिक सूत्र की रचना की, जो जैन आगमों में परम आदरणीय स्थान रखता है। वीर संवत् 98 में शय्यंभव जी दिवंगत हुए। और उनके पाट पर श्री यशोभद्र जी आसीन हुए। पाटलिपुत्र का राज-परिवार और मंत्री-परिवार उनका अनुयायी था। वीर संवत् 148 में उनका स्वर्गवास हुआ था।

यशोभद्र जी तक की स्थविरावली तो एक सरीखी है पर उनके बाद स्थविरावली के दो रूप मिलते हैं। एक संक्षिप्त दूसरा विस्तृत!

संक्षिप्त शैली में आचार्यों की गद्दी पर बैठने वाले मुख्य-2 मुनियों का उल्लेख है तथा विस्तृत शैली में आचार्यों की शाखाओं प्रशाखाओं का भी नामोल्लेख मिलता है। संक्षेप में लिखी शैली का क्रम देखिये। श्री यशोभद्र जी के दो महान् शिष्य थे संभूत विजय जी तथा भद्रबाहु जी। श्री संभूत विजय जी के शिष्य हुए काम विजेता, श्री स्थूलभद्र जी। श्री भद्रबाहु जी अंतिम श्रुत केवली थे। 14 पूर्वों का संपूर्ण ज्ञान इन्हीं के पास रहा। बाद में क्रमशः कम होता गया। इन्होंने ही छेद सूत्रों की रचना की। ध्यान-साधना के महान् अभ्यासी श्री भद्रबाहु जी महाप्राण साधना करने के लिए नेपाल के पहाड़ों में भी गए थे। उस युग के प्रशासन पर श्री भद्रबाहु जी म. का प्रबल प्रभाव था। चाणक्य जैसा नीतिकार उनका परम श्रावक था। तथा चाणक्य ही अपने शिष्य चन्द्रगुप्त मौर्य को भद्रबाहु जी के चरणों में लाया था। ताकि इस उभरते हुए भारत-सम्राट् के ऊपर सच्चे गुरु की कृपा बनी रहे तथा सत्ता के सिंहासन का मद इसकी रगों में न आए। चन्द्रगुप्त मौर्य को 16 सपने आए थे उनका विवेचन उसने श्री भद्रबाहु जी के मुखारविन्द से ही करवाया था, उन सपनों में आने वाले युग का चित्र स्पष्ट होता है। श्री भद्रबाहु स्वामी जी की कृपा से ही चन्द्रगुप्त मौर्य ने संथारा ग्रहण भी किया था। ऐसा इतिहासकार मानते हैं।

वीर निर्वाण के 155 वर्ष के करीब बारह वर्ष तक भयंकर दुष्काल पड़ा था। बहुत सारे श्रुत ज्ञानी मुनिराज काल कवलित हो गए। मुनियों का एक बड़ा समूह दक्षिण समुद्र की ओर चला गया। संघ बड़ी विपन्न और विकीर्ण अवस्था में था तब श्री भद्रबाहु स्वामी ही ऐसे श्रद्धेय पुरुष थे जो संघ को पुनर्गठित करने का सामर्थ्य रखते थे। पाटलिपुत्र (पटना) में मुनिसंघ एकत्रित हुआ। आगमों की वाचना संकलित की जाने लगी पर भद्रबाहु जी के अभाव में चौदह पूर्वो की वाचना अधूरी रह गई। वे नेपाल में गए हुए थे उनके पास स्थूल भद्र जी सहित अनेक मुनि वाचना लेने गए। श्री भद्रबाहु स्वामी ने उन्हें दस पूर्वो का ज्ञान तो पूरा दे दिया पर ग्यारहवें पूर्व का ज्ञान जब दे रहे थे तब श्री

स्थूलभ्रद जी चंचलता और प्रमाद के शिकार हो गए और ज्ञान की वह विशाल राशि वहीं पर अधूरी रह गई।

जैनों की दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायें श्री भद्रबाहु स्वामी को श्रद्धेय रूप में मान्य करती हैं। वीर निर्वाण के 170 साल बाद उनका देवलोक गमन हुआ। श्री भद्रबाहु जी के बड़े गुरु भ्राता श्री संभूत विजय जी के प्रमुख 12 शिष्य थे जिनमें स्थूल भद्र जी ने अपने गुरुदेव तथा चाचा गुरुदेव श्री भद्रबाहु दोनों की भरपूर सेवा की तथा उनके शासन भार को भी संभाला। श्री स्थूलभद्र जी की सात बहनों ने भी दीक्षा ली थी जिसमें यक्षा जी सब से ज्येष्ठ थी। श्री स्थूलभद्र जी का श्वेताम्बर परम्परा में बड़ा ऊंचा स्थान है।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमः प्रभुः।
मंगलं स्थूल भद्राद्या जैन धर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

इस सुप्रसिद्ध मंगल श्लोक में जैन धर्म के महान् व्यक्तियों में भगवान् महावीर और गौतम स्वामी के बाद आचार्य परम्परा में भी स्थूलभद्र जी को महनीय स्थान दिया है। इनकी जीवन कथा के रंग इन्द्रधनुष की तरह मनभावन और आकर्षक हैं। मगध सम्राट् नवमनन्द के मन्त्री श्री शकडाल जी इनके पिता थे। कल्पक वंश के मार्गदर्शन से नंदवंश ने अभूतपूर्व विकास किया था। शकडाल उसी कल्पक खानदान का कल्पवृक्ष था तथा स्थूलभद्र उसी कल्पवृक्ष का सुन्दरतम पुष्प था। 7 बहनें थी, श्रीयक छोटा भाई था।

युवावस्था आने पर स्थूल भद्र उस युग की अनिंद्य सुन्दरी कोशा के रूप-पाश में कैद हो गया था। किसी की सलाह उसे मान्य नहीं हुई। परिवार एवं राजदरबार के कर्तव्य से विमुख केवल कोशा के रंग महलों में अपनी युवावस्था को बिता रहा था। उधर उसके पिता राजनैतिक षड्यन्त्र के शिकार हो गए। महाराजा नन्द को वररुचि नामक एक कुटिल कवि ने ये जंचा दिया कि शकडाल तुम्हें मारकर अपने पुत्र श्रीयक को सिंहासन पर बैठाना चाहता है, अन्ततः शकडाल ने जब

स्वयं ही मृत्यु का वरण किया तब नन्द सम्राट् को सच्चाई का भान हुआ। जब स्थूलभद्र को सारे घटनाक्रम का पता चला तब वह वैराग्य भाव से भर गया और उसने श्री संभूत विजय जी के चरणों में दीक्षा ले ली। दीक्षा के कुछ वर्षों के बाद ही गुरुदेवों को उनके अध्यात्म बल का अहसास हो गया और उन्हें कोशा के रंग महल में चातुर्मास की आज्ञा प्रदान कर दी। उनके अन्य गुरु भाईयों में से एक ने सिंह की गुफा पर, दूसरे ने दृष्टि विष सर्प की बाम्बी पर तथा तीसरे ने कूए की मेंढ पर चार महीने बिताए तथा उग्र साधना से अपना तन तपाया जबकि स्थूल-भद्र ने कोशा की चित्रशाला में रहकर आहारादि भी किया। कोशा उनकी प्रेम दिवानी थी। हर अदा और अन्दाज से उसने स्थूल भद्र को अपने अधीन करने का प्रयास किया, पर स्थूलभद्र तो हिमवान की तरह अचल अटल अकम्प रहे, उल्टे कोशा ही उनके चरणों की उपासिका, बारह व्रत धारिणी श्राविका बन गई

चारों गुरुभाई गुरुदेव संभूत विजय जी के चरणों में पहुंचे तो गुरुदेव का मन गद्‌गद हो गया, उन्होंने चारों को अपने स्नेह का भाजन बनाया। बस हल्का सा अन्तर ये हुआ कि 3 तपस्वियों को उन्होंने 'दुष्कर कारक' तपस्वी कहकर सम्बोधित किया क्योंकि तीनों की तपस्या में तन को साधा गया था। जबकि स्थूल भद्र को उन्होंने दुष्कर-दुष्कर-दुष्कर कारक कहकर पुकारा क्योंकि उसने अपने मन को साधा था। मन को साधना तन साधने की तुलना में अधिक कठिन है। वैसे भी ब्रह्मचर्य सर्वश्रेष्ठ तप की श्रेणी में आता हैः—

'तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं'

श्री स्थूलभद्र की महानता को इतिहास ने स्वर्णाक्षरों में अंकित किया है, इन्होनें आचार्य भद्रबाहु स्वामी से 14 पूर्व पढ़ने प्रारम्भ किए थे, किन्तु 11वें पूर्व की पढ़ाई के दौरान उन्होंने अपनी साध्वी बहनों को चमत्कृत करने के लिए सिंह का रूप बना लिया था। इससे श्री भद्रबाहु ने इन्हें 'अयोग्य' का खिताब दे दिया तथा शेष चार पूर्व पढ़ाने से इंकार कर

दिया। संघ के अत्याग्रह अनुनय तथा स्थूल भद्र की क्षमायाचना के बाद उन्होंने शेष चार पूर्वो का शब्द ज्ञान तो दिया, अर्थ ज्ञान फिर भी नहीं दिया। इसलिए ये दस पूर्वी ही कहलाए। वीर निर्वाण 215 के लगभग इनका स्वर्गवास हुआ।

श्री स्थूल भद्र जी के पाट पर क्रमशः इनके 2 शिष्य आसीन हुए, पहले श्री महागिरिजी और फिर श्री सुहस्तीजी। इन दोनों को साध्वी यक्षा ने वैराग्य मार्ग पर लगाया था। आचार्य महागिरि ने कुछ वर्षों तक शासन-सूत्र को संभाला, आगमों का गहन अध्ययन किया और फिर एकान्त साधना में लीन हो गए। ये कुछ कठोर संयम प्रणाली के पक्षधर थे। जिनकल्प की विच्छिन्न परम्परा के जो पहलू उस युग में मान्य थे उन्हें ही अपनाने की रूचि रखते थे। जबकि आचार्य सुहस्ती सर्वजन ग्राह्य पद्धति के हिमायती थे। सम्राट् अशोक के पोते कुणाल के पुत्र राजा सम्प्रति को जैन धर्म की ओर मोड़ने का श्रेय आचार्य सुहस्ती को ही जाता है। बाद में आ. सुहस्ती जी के उपदेशों से प्रभावित हो उसने 100 दान शालाएँ खुलवाई। जिस प्रकार उनके दादा सम्राट् अशोक ने बौद्धधर्म का विदेशों में भी प्रसार किया उसी प्रकार सम्प्रति ने जैन धर्म को विदेशों तक पहुंचाने में अपनी ऊर्जा लगाई। आ. महागिरि वीरात् 245 में तथा सुहस्ती 291 में स्वर्गवासी हुए थे।

भद्रबाहु स्वामी के प्रमुख 4 शिष्यों से 4 शाखाएँ निकली जो भारत में दूर-2 तक फैली। संभूतविजय जी के 12 शिष्यों में स्थूल भद्र जी ने संघ को आगे बढाया था। इनके 2 शिष्यों में से महागिरि जी के 8 शिष्यों की 8 शाखाएँ बनी और सुहस्ती जी के 12 शिष्यों से 12 शाखाएँ तथा 6 कुल आगे बढ़े, इनके 2 शिष्य आचार्य बने सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध। ये दोनों राजपरिवार में पैदा हुए थे। संघ संचालन मुख्यतः सुस्थित ने संभाला और वाचना देने का काम किया सुप्रतिबुद्ध ने। इनके युग में दूसरी आगम वाचना हुई थी। भगवान् महावीर के 339 वें साल में सुस्थित जी दिवंगत हुए। इन दोनों महापुरुषों के 5 शिष्यों का परिवार बहुत फैला और जैनत्व का व्यापक प्रसार हुआ।

उसी युग में तत्वार्थ सूत्र के रचनाकार श्री उमास्वाति, प्रज्ञापना सूत्र के निर्माता श्यामाचार्य (जिनका अन्य नाम कालकाचार्य भी था) भी हुए थे। सुस्थित-सुप्रतिबुद्ध के 5 शिष्यों में से एक शिष्य थे श्री सिंह गिरि जी जिनका नाम आर्य वज्र जी ने अमर कर दिया था। इनके 4 प्रमुख शिष्यों में से 3 का वर्णन करेंगे क्योंकि ये आपस में जुड़े हुए थे– श्री धनगिरी, आर्य समित और आर्य व्रज। इनका जीवन वृत्त जैन इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ रहा है।

अवन्ती प्रान्त के तुम्बवन ग्राम में आर्य समित का जन्म हुआ था, पिता थे धनपाल, बहन थी सुनन्दा। समित ने अपनी बहन का विवाह वहीं के धनगिरि से किया था। समित को प्रारम्भ से ही वैराग्य भाव था और धनगिरि भी प्रारम्भ से ही वैराग्य मंडित थे पर परिस्थिति वश विवाह बन्धन में बंध गए थे। समित ने आर्यसिंह गिरि के चरणों में दीक्षा ले ली तो धनगिरि भी दीक्षा के लिए मचलने लगे, पर बड़ा कठिन काम था, विवाहिता नारी को निरालम्ब छोड़कर कैसे जाएँ? सुनन्दा को उम्मीद बंधी तो धनगिरि को भी कार्यसिद्धि का उपाय सूझ गया। उसने सुनन्दा से कहा कि तुम्हारे गर्भ का जीव अब तुम्हारे लिए सहारा बन जाएगा, अब तुम मुझे दीक्षा की आज्ञा प्रदान कर दो तो बड़ी मेहरबानी होगी। सुनन्दा के लिए ये फैसला लेना बड़ा कठिन था, पर धार्मिकता से सुसंस्कारित होने के कारण पतिदेव की दीक्षा में बाधा भी नहीं डालना चाहती थी अतः अपनी अनुमति दे दी। सुनन्दा एक आशा से जुड़ी उस पल की प्रतीक्षा में थी कि कब उसकी कुक्षि से पुत्र का जन्म हो। उसकी भावना पूर्ण हुई, उसने एक सलौने से पुत्र को जन्म दिया, वह नवजात शिशु जाति स्मरण लब्धि वाला था, उसे ज्ञात हुआ कि मेरे पिता जी दीक्षित हो चुके हैं। एक भाव उमड़ा कि मैं भी दीक्षा अंगीकार करुं। एक दिन का बालक किस प्रकार से अपनी भावना व्यक्त कर पाता। उसने अपने से अपनी माँ का मोह कम करने के लिए रोना प्रारम्भ कर दिया, निरन्तर रुदन, दूध पीते ही रुदन, जागते ही रुदन। माँ ऐसे बेटे को पाकर तो और भी दुखी हो

गई— पतिदेव किस झंझट में डाल गए खाना-पीना-सोना सब हराम कर दिया। उसकी हर लोरी, हर पुचकार बेकार हो गई। वैद्यों को दिखाया ताकि बीमारी का पता चल जाए पर वे भी फेल हो गए। पूजा-पाठ करवाकर देखा पर वह भी निरर्थक। बच्चे को न जाने क्या बिमारी लग गई थी, समझ नहीं आया। और उसका रोना भी 1-2 दिन नहीं, 6 महीने तक चलता रहा। माँ तो उद्विग्न हो गई, जी में आता इसे बाहर ही कहीं फैंक दूं? पर कहाँ? माँ का दिल था, दुखी तो बहुत थी पर फिर भी बच्चे को चुप कराने के लिए सीने से लगा लेती। एक मिनट चुप रहकर फिर रोना शुरु। दुखी माँ की भावना को कविता की पंक्तियों में:—

दो पल को मैं भी सो लूं-मेरे लाडले तू सो जा,
स्वर्गों से स्वप्न होते, स्वप्नों में ही तू खो जा ॥

भाई रहा ना मेरा साजन बना न मेरा,
मेरी गोद के ऐ जाए बस तू ही मेरा हो जा ॥

तेरी खुशी से मेरी खुशियाँ बंधी हुई हैं,
सिर से उतार दे या अब लाद दे तू बोझा ॥

मेरी जिन्दगी के मोती बिखरे हुए हैं बेटा,
अपनी हंसी के धागे में इनको तू पिरो जा ॥

पल-2 का रोना मुझसे जाता नहीं सहा है,
इक बार में भले ही पूरे का पूरा रो जा ॥

इस घर में गर है रहना सुख शान्ति से ही रह ले,
निष्ठुर पिता के पीछे जाना अगर है तो जा ॥

उस बालक के जन्म के 6 माह बाद आर्य सिंहगिरि संघ के साथ तुम्बवन में पधारे। जब आर्य समित और धनगिरि आहार के लिए जाने लगे तब गुरुदेव ने फरमाया— आज तुम्हें सचित्त, अचित्त, मिश्र

जो भी मिले ले आना। दोनों मुनि संयोगवश सुनन्दा के घर आ गए। दोनों को देख सुनन्दा का दुख उभर आया, बोली इस बालक को आप ले लो। कुछ महिलाओं की साक्षी में मुनियों ने बालक को झोली में डलवा लिया, और बच्चा एकदम चुप हो गया, तब माँ को उसके रोने का रहस्य समझ में आया। मुनियों ने बालक गुरुदेव को सौंप दिया। उन्होंने उसका नाम 'वज्र' रखा और एक श्राविका को पालन पोषण के लिए दे दिया। कुछ साध्वियाँ वहाँ रहती थी, दिन में वह बालक उपाश्रय में तथा रात को गृहस्थ के घर रहता। उसी अवधि में उसने ग्यारह अंगों का ज्ञान कर लिया। उसकी माँ सुनन्दा भी बच्चे को देखने प्यार करने आ जाती थी। तीन साल बाद जब आचार्य पुनः पधारे तो सुनन्दा ने अपना बालक माँग लिया। मामला पेचीदा हो गया, तब बालक ने सबके समक्ष माँ के खिलौनों को ठुकराकर, गुरुदेव के रजोहरण को उठाकर अपनी इच्छा का लोहा मनवा लिया। सुनन्दा भी साध्वी बन गई और आठ साल की उम्र में वज्र जी की भी दीक्षा हो गई। उनकी संयम की जागरूकता बड़े कमाल की थी। छोटी सी उम्र में बड़े-2 मुनियों को वाचना देने का गौरव भी प्राप्त किया।

पाटलीपुत्र के अरबपति सेठ धनदेव की पुत्री रुक्मिणी उन पर आसक्त होकर विवाह करने के लिए बजिद्द हो गई, तब उन्होंने उसे वैराग्य के रंग में रंगा और साध्वी दीक्षा दी। 40 साल की उम्र में ये आचार्य बने, संघ पर महान् उपकार किया और भगवान् के 584 साल बाद दिवंगत हुए।

आर्य वज्र के 3 प्रमुख शिष्यों के परिवार काफी बढ़े। जिनमें वज्रसेन जी दक्षिण भारत के सोपारक नगर में गए थे और चार श्रेष्ठि पुत्रों को दीक्षा दी थी। वैसे आर्य वज्र के बाद संघ का भार आर्य रक्षित के कन्धों पर आया था। ये बड़े युगान्तकारी महापुरुष थे। उन्होंने आगम वाचना को बिल्कुल नए रूप में ढाला और खतरे में पड़ी हुई श्रुतराशि को काल कवलित होने से बचाया था– नंदी सूत्र में इनकी स्तुति में लिखा हैः–

वन्दामि अज्ज रक्खिय खमणे, रक्खिय चरित्त सव्वस्से।
रयण करण्डगभूओ अणुओगो रक्खिओ जेहिं ॥

अर्थात् चारित्र के सार की रक्षा करने वाले आर्य-रक्षित की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने रत्नों की पिटारी के तुल्य अनुयोग (आगम की व्याख्या) की रक्षा की थी।

इनका जन्म दश पुर (मन्दसौर) में हुआ था। पिता रुद्रसोम थे जो कट्टर ब्राह्मण थे पर माँ रुद्रसोमा जैन सन्तों से प्रभावित थी, सामायिक संवर करती थी। ये दो भाई थे– आर्यरक्षित और फल्गुरक्षित। जब ये अपनी पढ़ाई पूरी करके बनारस से घर आए तब माँ ने कहा कि तू आचार्य तोसलिपुत्र से पूर्वों का अध्ययन कर। अध्ययन के निमित्त ये आ. तोसलि पुत्र के चरणों में आए, और उसी निमित्त दीक्षा ली। तोसली पुत्र को पूर्वों का अधिकृत ज्ञान नहीं था अतः अंगशास्त्रों का अध्ययन करवाकर उन्हें आर्य वज्र जी के पास पढ़ने के लिए भेज दिया। आर्य वज्र जी दस पूर्वों के ज्ञाता थे, उन्होंने आर्य रक्षित को दिल खोलकर पढ़ाना शुरु कर दिया, 9½ पूर्व पढ़ा दिए तो इसी बीच उनके छोटे भाई फल्गुरक्षित आ गए और उन पर घर जाकर माँ को दर्शन देने का दबाव डालने लगे। जब आर्य रक्षित अध्ययन में बाधा डालने को तैयार नहीं हुए तो भाई ने बड़ी समझदारी से नया पैंतरा बदला कि यदि आप घर पर चल पड़ोगे तो सभी परिवार जन दीक्षित हो जाएंगे। इस बात से आर्य रक्षित प्रभावित हो गए मगर कहने लगे कि उनके बारे में बाद में सोचेगें, पहले तुम तो दीक्षा ग्रहण करो। फल्गुरक्षित तुरन्त तैयार हो गया और उसकी दीक्षा हो गई। आर्य रक्षित को जँच गया कि अब घर दर्शन दे आऊं तो महान् उपकार होगा। उन्होंने आर्य वज्र से अपने मन की बात की। आर्य वज्र बोले– ठीक है कि वो दीक्षा ले लेगें पर पूर्वों का जो ज्ञान तुम्हें मिल रहा है वह अधूरा रह जाएगा। मेरी उम्र भी ज्यादा नहीं है अतः थोड़ा और धीरज रखो तथा 10 पूर्वों को पूर्ण होने दो। आर्य रक्षित जी दुविधा में पड़

गए। लहरों पर तैरते हुए राजहंस की तरह न इधर जा पा रहे थे न उधर। अन्ततः यही फैसला किया कि भाई ने मेरी बात मानकर दीक्षा ली है तो मैं इसकी बात मान लेता हूँ। आचार्य से विदा ले मन्दसौर पधार गए। सकल परिवार दीक्षित हो गया पर श्रुत ज्ञान की बहती धारा में विघ्न पड़ा तो ऐसा पड़ा कि दुबारा सिललिसा जुड़ ही नहीं पाया और जब पुनः कोशिश की तब तक आर्य वज्र जी अपनी जीवन लीला समेटकर दिवंगत हो चुके थे।

श्रुत गंगा की क्षीणतर स्थिति पर आर्य रक्षित चिन्तित तो अवश्य हुए पर उससे बड़ी चिन्ता उन्हें और भी हो रही थी कि आगमों को पढ़ाने की जो विधि उस युग में प्रचलित थी वह इतनी जटिल और उबाऊ थी कि एक-दो अतिशय मेधावी मुनियों को छोड़कर साधारण मुनि अपने पठित विषय बार-2 याद करते और बार-2 भूल जाते थे। आर्य रक्षित को फिक्र थी कि ऐसी स्थिति में कितने दिनों तक आगम ज्ञान अखण्ड रह सकेगा। उनके अपने मुनिराज अत्यन्त मेधावी थे जिनमें फल्गुरक्षित, दुर्बलिका, पुष्यमित्र, गोष्ठामाहिल आदि धुरन्धर विद्वान् थे।

एक बार दुर्बलिका को आचार्य जी ने कहा कि विंध्य मुनि को अध्ययन कराओ। जैसे-2 दुर्बलिका विंध्य मुनि को पढ़ाते, वैसे-2 अपना पठित विषय भूलने लगते थे। उनकी यह हालत देखकर आचार्य ने एक अद्‌भुत निर्णय लिया कि अध्यापन की शैली में परिवर्तन किया जाए। तब तक आगम की प्रत्येक पंक्ति को सात नयों के सात सांचों में ढालकर पढाया जाता था, उसका सुपरिणाम तो ये होता था कि अध्येता प्रारम्भ से ही गहन-चिन्तक और विस्तृत प्रज्ञा वाला बन जाता था परन्तु समस्या ये आती थी कि नयों के चक्कर में आकर ज्यादातर अध्येता मूलार्थ तक को भूल जाते थे। सबसे पहले आचार्य रक्षित जी ने सात नयों की अनिवार्यता को छोड़ा । किसी-2 प्रखर प्रतिभा सम्पन्न को पढ़ाना हो तो बात अलग। सामान्य मुनियों को नयों की उलझन से बचाए रखा और उन्हें कहा कि मूल को कायम रखो।

उनका दूसरा फैसला ये रहा कि उन्होंने आगमों को अलग-2 अनुयोगों में वर्गीकृत किया। उससे पहले प्रत्येक आगम को चारों अनुयोगों के साथ नत्थी किया जाता था। जैसे दशवैकालिक को ही लें इसे पढ़ाते समय चरणानुयोग तो समझाया ही जाता था, साथ ही साथ गणितानुयोग, द्रव्यानुयोग और धर्मकथानुयोग भी समझाया जाता था। इस में भी यही दिक्कत थी, प्रारम्भ में ही विद्यार्थी पर इतना Load पड़ जाता था कि वह मूल मुद्दे की बात भी भूल जाता था। बस कुछ तीव्र बुद्धि के धनी मुनियों को रस आता, शेष सब बोरियत के शिकार हो जाते। आर्य रक्षित ने आगमों का विभाजन ही कर दिया तथा आदेश दे दिया कि इस-2 आगम को पढ़ाते समय चरणानुयोग की शिक्षा देनी है। दूसरे आगम को पढ़ाते समय गणितानुयोग की। कुछ आगमों को बताया कि इन्हें द्रव्यानुयोग में ही शामिल करना तथा कुछ को धर्मकथानुयोग के बक्से में डाल दिया और ये भी फरमा दिया कि जिस मुनि को जिस अनुयोग में रूचि हो उसको उस अनुयोग वाले ही आगम पढाए जाएँ। उनके इस विभाजन से सकल संघ लाभान्वित हुआ। आगम पढ़ना जितना उलझन भरा नजर आता था वह उतना ही सरल, सरस और रोचक प्रतीत होने लगा इसलिए इतिहास ने आर्यरक्षित को आगम रक्षा का श्रेय प्रदान किया है।

इतिहासकारों का यह मानना है कि इनके युग में ही आगम वाचना हुई थी। वीर सवंत 592 के आसपास वाचनाचार्य नंदिल, आर्य रक्षित, वज्रसेन आदि महामुनियों की सन्निधि में यह आगम वाचना सर्वसम्मत रूप से स्वीकृत हुई थी। वीर सम्बत 597 में इनका देवलोक गमन हुआ और इनके शिष्य दुर्बलिका पुष्य मित्र को उत्तराधिकार मिला।

कल्पसूत्र में आगे केवल कुछ नामों का ही उल्लेख है। उनके नाम ही हम आपके सामने गिना रहे हैं। जैसे कि आर्यरथ, पुष्यगिरि, फल्गुमित्र, धनगिरि, शिवमूर्ति, दोज्जन्तकट, चित्र, नक्षत्र, रक्ष, आर्यनाग, जेहिल, विष्णु, कालक, अभार, सत्पल, भद्र, संघपालित, आर्यहस्ती, आर्यधर्म

तथा अन्त में देवर्धिगणी क्षमाश्रमण को वन्दना है। इन 20 महापुरुषों को वन्दना करने के बाद स्थविरावली पूर्ण हो गई।

इसमें देवर्द्धिगणी का कुछ परिचय देना आवश्यक है— इस अवसर्पिणी काल में जैन आगमों को सुरक्षित और जीवित रखने का गुरुतर कार्य श्री देवर्द्धिगणीजी ने किया है। वीर निर्वाण की दसवीं शताब्दी में इनका जन्म हुआ था। ये सौराष्ट्र में वेरावल नगर में पैदा हुए थे। पिता का नाम कामर्द्धि और माँ थी कलावती। ये धारणा है कि पूर्वभव में ये प्रथम देवलोक के अधिपति शक्रेन्द्र के सेनापति हरि-नैगमेषी देवता थे। परन्तु यहाँ जन्म लेने के बाद जैसे-2 युवावस्था आई वैसे-2 उच्छृंखल प्रवृत्तियों के शौकीन हो गए। धर्म की रूचि भी विकसित नहीं हो पाई। पूर्व भव के मित्र देव ने कदम-2 पर इन्हें धर्म मार्ग पर आने का संकेत किया। जवानी का नशा ज्यादा ही हावी था। अन्ततः पूर्व मित्र ने देवर्द्धि को भयंकर संकट में फंसा दिया, इतना भयंकर कि जिन्दगी ही खतरे में पड़ गई, तब इसने पुकारा— इस संकट में किसका सहारा लूं? आवाज आई— धर्म का सहारा लो। देवर्द्धि को होश आया और हर वाहियात हरकत छोड़कर धर्म की ओर अग्रसर हो गए तथा मुनि दीक्षा अंगीकार कर ली।

इनके गुरुदेव के सम्बन्ध में अलग-2 लेख मिलते हैं। कल्पसूत्र में लिखा है वे धर्मगणी के पाट पर बैठे। नन्दीसूत्र के अनुसार इनके गुरुदेव लौहित्य आचार्य थे। नन्दी की चूर्णि में इनके गुरु का नाम दुष्यगणी लिखा है। इतना अवश्य है कि इन्होंने उपकेश गच्छ के प्रमुख मुनिराज देवगुप्त के चरणों में एक पूर्व का अध्ययन किया था। ये ही इस आरे में अन्तिम पूर्वधर थे। इनके बाद पूर्वज्ञान लुप्त हो गया। ये एक बार अस्वस्थ हो गए, कफ की अधिकता थी अतः उपचार के लिए सौंठ की एक गांठ मंगवा ली। एक खुराक लेने के बाद सोचा दोपहर को पुनः ले लूंगा। उस गांठ को कान के पीछे मुंहपत्ती के धागे में अटका लिया पर समय पर लेना भूल गए। जब चौथे पहर में प्रतिलेखना के लिए मुंहपत्ती उतारी तो वह गांठ नीचे गिरी, अचानक एक विचार कौंधा कि

मैं एक सौंठ की गांठ को लेना भूल गया तो आगमों के गहन गंभीर पाठों को कैसे याद रख पाऊँगा तथा बाद के साधु साध्वियों के लिए तो याद रखना और भी मुश्किल हो जाएगा। शास्त्रों की यह निधि कहीं समाप्त न हो जाए। इसी चिन्तन में डूबे-2 उनका विचार बना कि आगमों को जुबानी याद रखने के साथ-2 लिपिबद्ध कर लिया जाए तो ये सुरक्षित रहेंगे। इस विचार को मूर्तरूप देने के लिए उन्होंने संघ एकत्रित किया। उस युग के सब श्रुतधर मुनिराज सौराष्ट्र के 'वलभी' शहर में इकट्ठे हुए तथा आगमों को ताड़पत्रों-भोजपत्रों पर लिखा गया।

भगवान् महावीर के निर्वाण के 980 वें साल में यह महान् कार्य पहली बार सम्पन्न हुआ, नेतृत्व था श्री देवर्द्धि गणी क्षमाश्रमण का। आगमों को पुस्तक का रूप देकर उन्होंने जैन शासन पर महान् उपकार किया है।

इस प्रकार कल्पसूत्र की स्थविरावली के अन्तिम महानायक श्री देवर्द्धिगणी का संक्षिप्त परिचय आपके सामने प्रस्तुत हुआ है।

पर्यूषणों की पावन घड़ियां हमारे उल्लास को शत सहस्र गुणा कर रही हैं। परसों सम्वत्सरी है। त्याग तपस्या के इन पर्वों का Final है और कल है Semi-Final. आप दोनों दिन पूरा लाभ उठाएँ। सारी समाज में विशेष उत्साह जागृत होना चाहिए। हमें आपका धर्म-स्नेह लुभा रहा है, इसीलिए आपसे ये बात कह रहे हैं। कल और परसों— ये दो दिन बड़े महत्वपूर्ण दिन है अतः चूकना नहीं, ध्यान रहे। आपके प्रति अपनी शुभ मंगल भावना अर्पित करते हुएः—

– जय जिनेन्द्र

अन्य उपयोगी भजन

तर्जः— होठों से छूलो तुम....

आर्य वज्र की गाथाएँ इतिहास सुनाएगा।
सुनने वाला मानव गाएगा दुहराएगा ॥टेक॥

1. संयम के परचम को बचपन में ही थाम लिया,
चलते अविराम रहे नहीं था विश्राम लिया,
शायद भविष्य इस पर विश्वास न लाएगा ॥

2. श्रुतज्ञान की गंगा में अवगाहन गहन किया,
लघु वय में वयस्कों को श्रुतज्ञान का दान दिया,
गुण पूज्य है आयु नहीं बतलाया जाएगा ॥

3. संयम समाचारी में चौकस हैं चौकन्ने हैं,
संयम की दृढ़ता के लिखे सैंकड़ों पन्ने हैं,
इन जैसी दृढ़ता को भला कौन निभाएगा ॥

4. सत्शील की सेवा की जगमग तस्वीर हैं ये,
शासन प्रभावना की बस एक नजीर हैं ये,
इन जैसा जमाना नहीं दोबारा आएगा ॥

5. वन्दन शतबार इन्हें श्रद्धा से करते हैं,
वन्दन से कर्मबन्धन झरते हैं गिरते हैं,
सौभाग्यशाली होगा जो सिर को झुकाएगा ॥

हरियाणवी भजनः–

तर्जः– सदा...

चन्द्रगुप्त महाराज हुए इस भारत में सुखदाता,
सोला सुपने आए उसने जिसका जिकर सुणाता ॥

1. पहलम झटकै कल्प रूख की डाली देखी टूटी,
कलयुग में कोए राजा ले ना साधपणै की घूटी,
फिर सूरज की मौत देख कै झाल बदन मैं उठी,
ब्रह्मज्ञान ना रहै देश मैं मूरखता की छूटी,
सौवे ना जागै था उसका पहरेदार विधाता ॥

2. चन्द्रमा में छिद्र देखे काली होगी तन मैं,
दया धर्म का रंग बदल दें पूज कुहा कै छण मैं,
हंसते गाते खूब नाचते देखे भूत गगन मैं,
धोखेबाज गुरु होज्यांगे पूजै देश लगन मैं,
एक पहर का तड़का था जब लेख लिखै बेमाता ॥

3. उसतै आगै विषधर देख्या काला बारा फण का,
बारा साल का काल पड़ैगा नाश बणादे घण का,
उल्टा चल्या विमान उरैं तै कारण बौलेपण का,
खास तौर की विद्या रहै ना तपसी हो चाहे रण का,
आगै-2 चलै जमाना दुःख का जाल बिछाता ॥

4. कुरड़ी ऊपर फूल कमल का आया बहोत अचंभा,
ब्राह्मण क्षत्रिय लड़-लड़ कै दें छोड़ धर्म का खंभा,
पटबिजणा परकाश करै था ना चौड़ा ना लम्बा,
आडम्बर में सन्त फंसेगें देगा कौण उलम्भा,
पर उपकार रहै ना, माणस अपना मतलब चाहता ॥

5. तीन समुन्दर सुखे, एक मैं नीर पावता दीखै,
म्हारे देश मैं तीन खूंट तै धर्म जावता दीखै,
सोने की थाली में कुत्ता खीर खावता दीखै,
बेइमान पै धन होज्या इसा वक्त आवता दीखै,
पाप करणिया मौज करैगा भला फिरै दुख पाता ॥

6. हाथी के होदे पै देखी वानर की असवारी,
नीच आदमी राज करैंगे बात पहाड़ तैं भारी,
समन्दर नैं जगहां छोड़ दी कोन्या बात विचारी,
राज करणिए झूठ बोल कै करै धर्म की हारी,
भूप करै विश्वासघात इसा बुरा जमाना आता ॥

7. याणे बाच्छे जुड़े अर्थ कै खींच करैं थे पूरी,
बालक धर्म करेंगे बूढे आलस करैं जरूरी,
खास रतन पै नहीं रोशनी पाई निगाह करूरी,
राजा जोगी मान घटा लैं करकै कार अधूरी,
इस पहरै मैं बड़े बड्यां नै सदाचार ना भाता ॥

8. राजकुमार बैल पै बैठा या थी बात शरम की,
राजकरणिए बुरे काम नैं कहैंगे कार धर्म की,
दो हाथी लड़े काले रंग के कोन्या कदर नरम की,
ना बरसै, कै घणा बरसजै घड़ी-2 कुकरम की,
मात पिता बेटा बेटी का कतई मेल ना खाता ॥

9. चन्द्रगुप्त महाराज एक दिन आप गुरु पै आए,
भद्रबाहु स्वामी जी ने उसके अर्थ बताए,
उल्ट पुल्ट हो ज्या कलयुग में दुख के बादल छाए,
इन बातां नै सुण-2 राजा बहोत घणे घबराए,
होनहार बलवान समझ कै अपणा मन समझाता ॥

10. आजकाल उन सुपना आली बात सामनैं आगी,
महापुरुषां की वाणी स्याणी झूठी कोन्या जागी,
नेम धरम सुकरम की ताली झूठ कपट नैं थ्यागी,
राजा और प्रजा मैं चौड़ै बेइमानी छागी,
मुंशीराम बड़ौदे आला छंद बणा कै गाता ॥

सातवां प्रवचन

भजनः–

तर्जः– जिसको नहीं देखा हमने कभी...

त्रस स्थावर जीवों की रक्षा मुनियों का प्रथम महाव्रत है
इस व्रत की पूर्ण सुरक्षा से चारों महाव्रत भी अक्षत हैं ॥टेक॥

1. जिन-प्रवचन में सूक्ष्मता जितनी है अहिंसा की,
अन्यत्र नहीं मिलता कहीं सौवां हिस्सा भी,
मुनियों की अहिंसा के आगे रही सारी दुनिया अवनत है ॥

2. मिट्टी पानी अग्नि की हिंसा से सदा बचना,
वायु को बचाने हित की मुखपत्ती की रचना,
फल फूल पत्र को छूना भी नहीं जैन मुनि को अनुमत है ॥

3. कृमि, कीट, लीख, मच्छर और जलचर स्थलचर सारे,
जीवन के अभिलाषी हैं मुनियों को अतः प्यारे,
मुनियों की उत्तम चर्या से नहीं जीव कोई भी आहत है ॥

4. पैदल नंगे पैरों से चलना है दिन में ही,
रात्रि भोजन नहीं करना हो कष्ट विपिन में भी
मन शान्त मधुर वाणी उनकी काया सुगुप्त सुसंयत है ॥

5. मिथ्या भाषण हिंसा है कटु भाषण हिंसा,
लेना अदत्त हिंसा है दुर्बल त्रासन हिंसा
मैथुन में घोरतम हिंसा है हिंसा ही परिग्रह-संपत् है ॥

6. हिंसा करनी वर्जित है वर्जित है करवानी,
हिंसा का समर्थन वर्जित है वर्जित है प्राण-हानि,
ये शुद्ध अहिंसा की धारा युग-2 में बही अनवरत है ॥

24वें तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना करते हुए अपने पूज्य गुरुदेवों को वन्दना करता हूँ तथा आप सभी भाई बहनों को जय जिनेन्द्र!

पर्यूषण का सातवां मंगल दिवस, हमारा लक्ष्य अति निकट है, अन्तर् में तृप्ति सन्तुष्टि का अनुभव हो रहा है। ऐसा लग रहा है कि शासनपति भगवान् और गुरुदेवों ने स्वयं अदृश्य रूप से उपस्थित होकर सब कार्य सम्पादित किया है। हमारी अन्तरात्मा तो यही कह रही है:—

1. **"मेरा आपकी कृपा से हर काम हो रहा है,**
   देते हो तुम प्रभुजी- (गुरुजी) मेरा नाम हो रहा है ॥

2. **किसी का काम होता है किसी का नाम होता है,**
   हैं जलते तेल और बाती दिए का नाम होता है।

तेल और बाती तो मेरे प्रभु और गुरु हैं— असली रोशनी तो वही दे रहे हैं। हम जैसे मिट्टी के दिए कर भी क्या सकते है? खैर...

पिछले 6 दिनों में हमने अपने इतिहास में डुबकी लगाई। भगवान् महावीर की समग्र जीवनी सुनी, उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकरों का संक्षिप्त परिचय पाया। भगवान् के बाद के आचार्यों में से कुछ प्रमुख व्यक्तियों की गाथाएँ ज्ञात हुई। आज हम उस बिन्दु पर आ रहे हैं जिस बिन्दु के कारण इस सूत्र का नाम 'कल्पसूत्र' पड़ा तथा इसे पर्यूषण पर्वों के दौरान सुनाने की परम्परा चली। उस बिन्दु का नाम है— समाचारी। दशाश्रुत स्कन्ध आगम के आठवें अध्ययन का नाम है— पर्यूषणा-कल्प, और इस अध्ययन में मुनिवृन्द को वर्षाकाल के दौरान क्या-2 करना होता है, क्या कल्पता है, ये विवेचन है। इसलिए पूरे आगम का नाम 'कल्पसूत्र' पड़ गया। तथा इसीलिए पर्यूषणों के दौरान इसकी वाचना की जाती है।

जैन मुनियों का जीवन कठिन विधि-विधानों से बंधा हुआ रहता है। जब तक वे उनका अप्रमाद भाव से पालन करते हैं तब तक

उनका गौरव सुरक्षित रहता है। जिस दिन उनकी दृष्टि अपनी स्वीकृत मर्यादाओं से दूर चली जाती है उसी दिन से वे अपने लोक-परलोक दोनों से हाथ धो बैठते हैं। मछली पानी से बाहर छलांग लगाएगी तो जान से हाथ धो बैठेगी, उसे जीना है तो पानी की सीमा में ही जीना पड़ेगा। श्रावक वर्ग में श्रद्धा का कारण मुनियों की उज्ज्वल साधना है। व्याख्यान वाचस्पति गुरुदेव श्री मदनलाल जी म. फरमाया करते थे यदि साधु 90 प्रतिशत ऊपर उठता है तब कहीं श्रावक 10 प्रतिशत ऊपर उठता है और यदि साधु 10 प्रतिशत भी गिर जाता है तो श्रावक तो 90 प्रतिशत गिर जाता है। वह जब साधु जीवन की दुर्बलताएँ देखता है तो वह मानने लगता है कि हमें गिरने में क्या दिक्कत है? वह तो बहाना ढूंढता है नीचे उतरने का, उसे चढ़ने में जोर लगता है। साधुओं की उत्कृष्ट जीवन चर्या को देखकर वह स्वयं कुछ ऊपर उठने की चेष्टा करता है। इसलिए जरूरी है कि हम भी जानें कि समाचारी क्या है? साधुओं के लिए तो ये जानना जरुरी है ही, हमारे लिए भी काफी जरुरी है, हम उनकी महान् समाचारी को जाने और उसका पालन करने वालों को नमन करें।

मुनियों की महिमा सागर के जल से अपार है।
उपवन के फूलों से भी गुणों का विस्तार है ॥

आओ, जरा कल्पसूत्र के इस महत्वपूर्ण भाग पर दृष्टिपात करें। सबसे पहले आगमकार फरमाते हैं– भगवान् महावीर ने चातुर्मास के 50वें दिन ही पर्यूषणा की, क्योंकि वर्षा ऋतु के कारण अव्यवस्थित हुए गृहस्थों के आवास पुनः व्यवस्थित हो जाते थे और श्रमणों को उचित आवास मिल जाते थे। वर्षा के प्रारम्भिक दौर में मकान की छतें चूने लगी हों, दीवारें भुरभुरा गई हों, पलस्तर सील गए हों तथा कड़ियाँ आदि खिसक गई हों तो श्रावक वर्ग स्वयं आवास की किल्लत महसूस करता है। साधु को मकान उपलब्ध करवाना कठिन हो जाता है पर पर्याप्त वर्षा के बाद मौसम साफ होने पर गृहस्थ अपने मकान

की जरूरी मरम्मत करवा लेता है फिर साधु साध्वी को भी उचित व पर्याप्त स्थान मिल सकता है। और पुराने युग में तो प्रायः ऐसा ही होता था इसीलिए प्रभु महावीर ने 50वें दिन पर्यूषण की परम्परा डाली।

भगवान् महावीर के बाद गणधरों ने, उनके बाद उनके शिष्यों ने, फिर अन्य स्थविरों ने 50वें दिन पर्यूषणा की। इसीलिए आज तक यह परम्परा है कि सभी श्रमण श्रमणियाँ 50वें दिन ही पर्यूषणा करते हैं। नियम बना दिया कि 50वां दिन लांघना पूर्णतः निषिद्ध है। ये एक ऐतिहासिक दिवस है, जिसको भगवान् महावीर ने अपनी स्वीकृति प्रदान की है, जिसे हम कल सम्वत्सरी के रूप में मनाएगें।

चातुर्मास के दौरान साधु साध्वियों को क्या करना होता है उसकी तालिका प्रारम्भ कर रहे हैं।

1. चातुर्मास के दौरान साधु साध्वी को सवा योजन से बाहर जाना नहीं कल्पता, घड़ी भर भी वहाँ रुकना मना है। सवा योजन की वर्तमान युग में व्याख्या एक दिशा में 7 किलोमीटर के रूप में की जाती है। यदि 7 किलोमीटर के बीच में नदी बहती हो और निरन्तर पानी बहता हो तो उसको लांघना नहीं कल्पता। यदि कोई खास मजबूरी हो तो ऐसी नदी को पार कर सकता है जिसमें एक ही पैर पानी में रखना पड़ें, दूसरा पैर मैदान में रखा जा सके।
2. चातुर्मास से पूर्व आचार्य आदि ने जिस साधु को ये अधिकार दिया है कि तुम ही अन्य मुनियों को वस्त्र, भोजन आदि देना तो वही दे, अन्य को देना नही कल्पता। जिनको माँगकर लेने का आदेश है, वे माँगकर ही लें। स्वेच्छा से कुछ न लें न दें।
3. जो साधु साध्वी स्वस्थ है उन्हें वर्षावास में सामान्य रूप से प्रतिदिन दूध, दही घी, मक्खन आदि विगय नहीं लेने चाहिए।
4. कोई साथी मुनि अस्वस्थ हो तो गोचरी को जाने वाला साधु उसके लिए जरूरी वस्तु और उसका परिमाण पूछ ले कि आपको

क्या वस्तु और कितनी चाहिए और गोचरी में वह वस्तु मिले तो उतने ही परिमाण में लाए, अधिक नहीं।

5. वर्षावास में जिन परिवारों से अधिक प्रेम और आत्मीयता बन गई हो उनसे कोई वस्तु नाम लेकर नहीं माँगे। इससे दोष लगने की संभावना रहती है।

6. जो साधु चातुर्मास में प्रतिदिन आहार करते हैं उन्हें अपने लिए केवल एक बार ही आहार को जाना चाहिए। आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, रोगी या नवदीक्षित मुनि की सेवा के लिए तो पुनः जा सकता है।

7. जो साधु एक-दो दिन का तप करता है उसे भी एक बार ही आहार को जाना चाहिए पर लाए हुए आहार से उसे तृप्ति न मिले तो दोबारा जा सकता है। बेला-2 तप करने वाले को 2 बार, तेला-2 तप करने वाले को 3 बार सामान्य रूप से जाना कल्पता है तथा लम्बी तपस्या करने वाला जितनी बार जरूरत हो उतनी बार जा सकता है।

8. नित्य भोजी साधु सभी प्रकार के पानक ले सकता है पर एक-2 व्रत करने वाले को उत्स्वेदिम, संस्वेदिम तथा चावल का पानी लेना कल्पता है। अर्थात् वह पारणे में आटे का धोवन, चने आदि अनाज का उबला पानी तथा चावल का माँड भी ले सकता है। बेले-2 तप करने वाला तिल, तुष और जौं का बना हुआ पानक ले सकता है। तेला-2 तप करने वाला आयाम, कांजी तथा शुद्ध गर्म ले सकता है। लम्बी तपस्या करने वाले को केवल गर्म पानी ही लेना चाहिए पर उसमें कोई दाने आदि का मिश्रण न हो। यदि कोई साधु साध्वी संथारा किए हुए है तो उसे गर्म पानी ही लेना चाहिए पर ध्यान रहे कि उसमें कोई दाना न हो, छना हुआ हो, थोड़ी मात्रा में हो और अच्छी क्वालिटी का हो।

9. वर्षावास में साधु साध्वी को 5 दाती भोजन की तथा 5 दाती पानक की लेनी चाहिए। इस मात्रा में कमी तो की जा सकती है, बढोतरी नहीं। दाती यदि बिल्कुल छोटी हो तो भी उससे गुजारा करे, दोबारा आहार पानी को न जाए।

एक बार में जितना भोजन या पानी दिया जाए, उसे दाती कहते हैं।

पुराने युग में बिहार प्रान्त में भोजन के साथ पानी की जगह फलों के रस से मिश्रित पेय पदार्थ बनते थे, उन्हें पानक कहा जाता था जैसे आजकल शिकंजी, आम का पाना, कांजी आदि बनती हैं ऐसे ही पुराने समय में प्रचुर मात्रा में पानक बनता था। जौं, चावल तथा कुछ अन्य कच्चे अनाजों के रस से भी पानक तैयार होते थे। वे भोजन के साथ प्रस्तुत किए जाते थे।

10. साधु साध्वी को दावत वाले घर में नहीं जाना। यहाँ तक कि उस घर से सटे हुए सात घरों में भी नहीं जाना। किन्हीं का मानना है कि दावत वाले घर से सटे हुए एक घर को छोड़कर तथा किन्हीं का मानना है कि 7 घर छोड़कर। दावत वाले घर या आसपास जाने से जैन मुनि के प्रति रसना-लोलुपता की छवि बन सकती है।

11. वर्षावास में जो साधु हाथ में ही भोजन करते हैं उन्हें वर्षा की एकाध भी बूंद गिरने की आशंका हो तो आहार पानी के लिए बाहर नहीं निकलना। और खुले आसमान में आहार नहीं करना। यदि संयोग वश आहार करते-2 बारिश आने लगे तो हाथ से हाथ को ढककर, बगल में छिपाकर किसी सुरक्षित जगह पर पहुंच जाए।

12. हाथ में भोजन करने वाले मुनि को साफ मौसम में ही आहार को जाना है। पात्रधारी बादलों के रहते हुए भी जा सकता है।

13. कोई साधु साध्वी आहार पानी के लिए गृहस्थ के घर पहुंचा हो और तभी बूंदा बाँदी प्रारम्भ हो जाए तो वह किसी छायादार

सुरक्षित जगह पर खड़ा हो जाए। बारिश रुकने पर आहार लेते समय ये विवेक रखे कि गृहस्थ के घर जो वस्तु मुनि के आने से पहले बनी थी वह तो ले सकता है पर जो वस्तु साधु के आने के बाद तैयार हुई है वह न ले, जैसे कि पहले चावल बने हैं, दाल बाद में बनी है तो वह न ले, दाल पहले बनी थी चावल बाद में बने हैं तो चावल न ले, दोनों बाद में बने हैं तो दोनों न ले, दोनों पहले बने हुए थे तो दोनों ले सकता है अर्थात् निमित्त दोष की स्वल्पतम संभावना से भी बचे।

14. साधु ने आहार ले लिया है और तभी वर्षा हो गई। यदि आहार केवल उसके लिए ही है तो एकान्त में पहले आहार का सेवन कर ले फिर उपाश्रय में पहुंचे। रात होने से पहले वापिस उपाश्रय में पहुंच ही जाए।

15. साधु बरसात से बचने के लिए किसी सुरक्षित जगह खड़ा है तभी एक या दो साध्वी आ जाएँ तो साधु वहाँ खड़ा न रहे। दो साधु दो साध्वी, दो साधु एक साध्वी हों तब भी खडा नहीं रहना। यदि कोई गृहस्थ वहाँ हो तो रह सकता है। इसी तरह साध्वी के पास गृहस्थ आ जाए तो साध्वी को भी ठहरना नहीं कल्पता। यहाँ जलकाय की विराधना भी करनी पड़े तो मजबूरी समझकर कर सकता है क्योंकि ब्रह्मचर्य की सुरक्षा उससे भी ज्यादा जरूरी हैं।

16. बिना किसी को पूछे किसी का आहार नहीं लाना चाहिए क्योंकि हो सकता है कि सामने वाला साधु आहार न करे।

17. किसी प्रसंग पर साधु साध्वी वर्षा से भीग जाए तो तब तक आहार नहीं करना जब तक उसके हाथ की रेखाएँ, नाखून, भौंह अच्छी तरह सूख न जाएँ।

18. साधु साध्वी को सावधानी रखनी चाहिए कि 8 चीजें कई बार इतनी बारीक होती हैं कि जरा सी बेगौरी हो जाए तो वे नजर

नहीं आती जैसे छोटे-2 प्राणी, कुंथु आदि, बारीक काई, सूक्ष्म-2 हरियाली, फूल, अण्डे और कीड़ी आदि के बिल तथा ओस कोहरे जैसा पानी इन सबकी यतना साधु-साध्वी को अवश्य करनी चाहिए।

19. साधु-साध्वी आहार पानी आदि किसी भी काम के लिए गृहस्थों के घर जाना चाहे तो अपने बड़ों को कहकर, उनसे आज्ञा लेकर ही जाए, स्वेच्छा से नहीं। वे हर ऊंच नीच को समझते हैं अतः उनकी जानकारी में ही हर कार्य होना चाहिए। ऐसे ही स्वाध्याय भूमि में जाना हो, आवश्यक क्रिया के लिए जाना हो तो उनके Notice में जरूर रहे।

20. साधु साध्वी को किसी विशेष प्रकार का विगय लेना ही हो तो गुरुओं को बताए कि ये वस्तु इतनी बार मुझे लेनी है, उनकी अनुमति मिलने पर वह ले सकता है, क्योंकि बड़ों को बहुत कुछ सोचना होता है। ऐसे ही साधु को कोई खास ईलाज करवाना हो, तपस्या करनी हो, संथारा करना हो, कोई विशिष्ट स्वाध्याय करनी हो, धर्म जागरणा करनी हो, सब अपने गुरुदेवों को बताकर ही करे।

21. साधु साध्वी ने अपने कपड़े, पात्र सामान धूप में सुखा दिए हों और तभी उसे कार्यवश उपाश्रय से बाहर जाना पड़ जाए तो किसी सहवर्ती साधु साध्वी को कह दे कि थोड़ी देर इस सामान की देखभाल रखना मैं अभी लौट आऊंगा। यदि सहवर्ती उसके सामान की जिम्मेवारी ले लें तो वह अपना आवश्यक कार्य सम्पन्न करने जा सकता है।

22. वर्षावास में साधु साध्वी को पट्टा आदि शय्यासन ले लेना चाहिए क्योंकि खुली जमीन पर सोने से जीव जन्तुओं की बहुलता के कारण विराधना का खतरा है। प्रतिलेखना, प्रमार्जना कम हो पाती है जबकि पट्टा लेने से जीव रक्षा अधिक हो सकती है।

23. वर्षा में हरियाली और जीवोत्पत्ति की अधिक संभावना रहती है अतः शौच आदि के लिए कम से कम तीन ठिकाने ढूंढ लेने चाहिए।

24. इसी तरह बलगम, लघुनीत और बड़ी नीत के लिए तीन पात्र भी रख लेने चाहिएँ।

25. पर्यूषणों के बाद साधु साध्वी के सिर पर इतने भी केश शेष न रहें जितने गाय के रोएँ होते हैं। अर्थात् सम्वत्सरी से पहले-2 लोच हो जाना चाहिए। यदि सम्वत्सरी वाले दिन किसी साधु साध्वी की दीक्षा को कुल 15 दिन हुए हों और बाल आए ही न हों तो मान लें कि लोच हो गया। एक महीने के ही बाल हों तो उस्तरे से मुण्डन करवाया जा सकता है। डेढ़ महीने की स्थिति के बाल हों तो कैंची से कटवा लें। उससे ज्यादा बढते-2 छह महीने तक के बाल हों तो लोच ही करवाना आवश्यक है। (यदि कोई बिल्कुल स्थविर-बूढा साधु साध्वी हो तो साल भर में भी करवा सकता है। पर सम्वत्सरी पर सिर पर बाल नहीं होने चाहिएँ ये अनिवार्य है।

26. सम्वत्सरी के बाद कोई भी पुराना झगड़ा अपने मुंह से साधु साध्वी को प्रकट करना नहीं कल्पता, यदि कोई पुरानी बात को छेड़े तो उसे समझाया जाए कि ये कल्प से बाहर है। यदि फिर भी वह न माने तो उससे सम्बन्ध विच्छेद कर लेना चाहिए।

27. वर्षावास में साधु-साध्वियों में किसी विषय पर कटुता पूर्ण झगड़ा हो जाए तो फर्ज ये बनता है कि छोटा साधु बड़े साधु से क्षमा माँगे या फिर बड़ा भी छोटे से क्षमा माँग ले। क्षमा लेनी है क्षमा देनी है। शान्ति करनी है करवानी है। अपनी ओर से बोल चाल खोलने की पहल करनी है। जो शान्ति, क्षमा को धारण करता है वह आराधक है, जो नहीं करता वह विराधक है, इसलिए स्वयं शान्ति के लिए प्रयत्नशील रहिए क्योंकि श्रमण धर्म का सार शान्ति है।

28. चातुर्मास के समय 3 स्थानों को निगाह में रखना चाहिए। उपयोग में आने वाले की सफाई करनी है। प्रयोग में न आने वाले मकान की देखभाल करनी है।

29. जिस दिशा में आहार पानी को जाना हो, जाने से पूर्व साधु सहवर्तियों को बताकर जाए कि उधर जाने का भाव है, क्योंकि चातुर्मास में तपस्या चलती रहती है, कमजोरी के कारण साधु कहीं गिर जाए, मूर्च्छित हो जाए तो अन्य मुनियों को वहाँ पहुचने में सुविधा रहेगी।

30. कोई विशेष कारण हो जैसे कि कोई दवाई आदि का प्रसंग आ पड़े तो साधु वर्षावास में 4-5 योजन चला भी जाए तो सूर्यास्त से पूर्व वह अपने उपाश्रय में जरूर पहुंच जाए।

इस सांवत्सरिक स्थविर कल्प का विधिपूर्वक पालन करने वाले कुछ भव्य जीव उसी भव में मोक्ष चले जाते हैं। कोई दूसरे भव में, कोई तीसरे भव में। सात-आठ भवों से ज्यादा तो उन्हें संसार में घूमना ही नहीं पड़ता।

इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने राजगृह नगर के गुणशील चैत्य में बहुत सारे साधु साध्वी, श्रावक श्राविका, देव और देवियों के सामने यह पर्यूषण कल्प विस्तार सहित फरमाया था। इस तरह दशाश्रुत स्कन्ध का पर्यूषण-कल्प नामक आठवा अध्ययन सम्पूर्ण हो रहा है।

बन्धुओं! इस अध्ययन का सार संक्षेप में आपके सामने है। भगवान् महावीर की कितनी महान् कृपा है कि चारित्रिक ह्रास के इस युग में भी उन्होंने अपने मुनिसंघ के लिये बड़े कठिन नियम बनाए हैं। यों तो उन्होंने साधु साध्वी को प्रतिपल ही जागरूक रहने को कहा है पर वर्षावास में और भी अधिक सावधानी की आवश्यकता फरमाई है। क्योंकि बरसात के कारण रास्ते बन्द हो जाते हैं, जगह-2 कीचड़ हो जाता है, काई और घास उग जाती है। मक्खी, मच्छर, कीड़ी, कुंथुए, बिच्छु आदि प्रचुर मात्रा में पैदा हो जाते हैं। मकानों की स्थिति

अस्त-व्यस्त हो जाती है। शरीर में बिमारी के लक्षण भी उभरने लगते हैं। दीर्घकाल तक एक जगह रहने से गृहस्थों से रागात्मक भाव की संभावना बढ़ जाती है तथा बाह्य प्रतिकूलताओं के कारण मानसिक विषमताओं का जन्म हो जाता है। और त्यागी वर्ग में भी कभी-2 पारस्परिक क्लेशों का जन्म हो जाता है। हर पहलू को ध्यान में रखकर प्रभु महावीर ने अपने मुनियों की चर्या बड़ी Practical और समाधिदायक बनाई है।

जैन सन्तों ने अपने उच्च जीवन और मंगलकारी प्रवचनों से मानव हृदयों में धर्म की जड़ें कायम की हैं। जब भी कोई अनजान आदमी जैन सन्तों के सम्पर्क में आता है वह उनकी संयम-साधना से तत्काल प्रभावित हो जाता है। आज का युग सुविधा परायण हो रहा है, ऐसे में भी जो अपनी स्वीकृत मर्यादाओं में अडिग रहते हैं ऐसे गुणी, संयमी पुरुषों का जीवन युग प्रवाह को चुनौती देता प्रतीत होता है।

दशवैकालिक सूत्र में लिखा हैः— **'पडिसोयमेवप्पा दायव्वो होउ कामेण'** अर्थात् जो कुछ बनना चाहता है उसे प्रवाह के खिलाफ तो चलना ही पड़ेगा।

महावीर के पथ में चलना जो चाहे,
लगा जोर दुख से निकलना जो चाहे ॥
न जब तक छूटेंगी ये सुखशीलताएँ,
यें फैली हुई आसक्तियों की लताएँ ॥
न जब तक छूटेगा ये झंझट जगत का,
इसे छोड़ मग में संभलना जो चाहे ॥
लगा जोर दुख से निकलना जो चाहे ॥

जैन इतिहास के धुरधंर विद्वान् सिद्धसेन जब राजसत्ता की निकटता के कारण बिना शारीरिक मजबूरी के ही पालकी में बैठने लगे थे, तब उनके गुरुदेव वृद्धवादी ने उनकी पालकी में लगकर उन्हें शर्मसार किया था और शिथिलाचार से दूर किया था।

साधु जीवन कठिन है जैसे पेड़ खजूर।
चढे तो चाखे प्रेमरस गिरे तो चकना चूर ॥

रत्नाकर सूरि को परिग्रह-उपाधि, आडम्बर के बोझ से लदे देखकर एक श्रावक कुण्डलीक को बड़ा दुख हुआ। उन्हें सीधे कहने का हौंसला तो नहीं हुआ पर परिग्रहवाद पर करारा प्रहार करने वाली एक गाथा का सही अर्थ पूछकर उन्हें संयम पथ पर चलाने की भावना जरूर प्रकट कर दी। रत्नाकर सूरि ने उस गाथा का अपनी बुद्धि से 6 महीने तक अलग-2 अर्थ कर दिया। श्रावक उनकी बौद्धिक क्षमता का लोहा तो मान गया पर उसे तो चारित्रिक दृढता से ही प्रयोजन था और उसने विनति की कि हे गुरुदेव! मुझे इस गाथा का सन्तुष्टि जनक उत्तर दे दीजिए। श्रावक की शुभ भावनाओं का सत्य परिणाम आया और अन्ततः श्री रत्नाकर सूरी ने पहले अपना तामझाम समेटा और फिर उस गाथा का यथार्थ अर्थ बताया।

जैन साधुओं की इस संयमी वृत्ति ने ही जैनत्व को उच्चता दिलाई है। जब-2 संयमीय परम्पराओं में शिथिलता आई है तब-2 साधुओं और श्रावकों ने अपनी कुर्बानियाँ देकर संयम धर्म को उजागर किया है।

भगवान् महावीर के 2000 वर्ष बाद जब जिन शासन घोर शिथिलाचार के महापंक में धंसा हुआ था तब वीर लोकाशाह ने विशुद्ध धर्मक्रान्ति का बिगुल बजाया था और आगम-मूलक उनकी प्ररूपणाओं से प्रेरित हो विक्रम सम्वत 1529 अक्षय तृतीया के दिन 45 जैन युवकों ने शुद्ध संयमी दीक्षा अंगीकार की थी। लोकागच्छ के उस अभियान को वेग देने में 5 क्रियोद्धारक मुनियों का विशिष्ट स्थान रहा है, उनके पावन नाम है— श्री जीवराज जी म. श्री धर्मसिंह जी म., श्री धर्मदास जी म. श्री लवजी ऋषिजी म. तथा श्री हरजी ऋषिजी म.।

आज का सकल स्थानकवासी मुनि संघ इन्हीं 5 महापुरुषों का ही परिवार है। उत्तर भारत में मुख्य रूप से श्री लवजी ऋषिजी म. की मुनि परम्परा ने इस धर्म ध्वजा को बुलन्द किया। श्री सोमजी ऋषिजी

म. श्री लवजी ऋषिजी म. के शिष्य या गुरु भ्राता थे, उनके सम्पर्क में उत्तरार्ध लोकागच्छ के यति श्री हरिदास जी आए। श्री हरिदास जी की गद्दी लाहौर में थी। ये किसी कार्यवश गुजरात में गए थे वहाँ श्री सोम ऋषि जी से इनका मिलन हुआ। उनकी चर्या देख इतने प्रभावित हुए कि उनके शिष्य बन गए और फिर पंजाब या उत्तर भारत की धर्मश्रद्धा के आधार बने। उनके वंशानुवंश श्री मलूक चन्द जी म. भी अपनी साधना के कारण जग विख्यात हुए। आगम ज्ञान के अलावा उर्दू, फारसी, अरबी के भी गहन विज्ञाता थे। उन्हें कुरान का तलस्पर्शी बोध था। एक बार आगरा की जामा मस्जिद में उन्होंने 500 मुसलमानों को मुंह पट्टी लगवाकर बैठाया था।

उत्तर भारत की इस उज्ज्वल परम्परा को सुव्यस्थित रूप देने का महनीय कार्य किया था आचार्य श्री अमर सिंह जी म. ने। अमृतसर में जन्मे और दिवंगत हुए, दिल्ली में दीक्षित हुए आचार्य सम्राट् श्री अमर सिंह जी म. को घरेलू तथा साधु जीवन में बड़े उतार चढाव से गुजरना पड़ा था। धैर्य और तितिक्षा के धनी आचार्य प्रवर आँधी और तूफानों में अविचल रहकर आगे बढ़ते रहे। उनके बलिदानों के फल स्वरूप ही आज का साधु समाज गर्व से सिर ऊंचा करके चल रहा है।

आचार्य परम्परा में जहाँ पूज्य श्री रामबख्श जी म., श्री मोतीराम जी म., श्री सोहन लाल जी म., श्री कांशीराम जी म. तथा आचार्य आत्माराम जी म. स्थानकवासी परम्परा की बागडोर संभाले रहे, वहीं युग प्रधान परम्परा में चरित्र चूड़ामणि श्री मयाराम जी म. ने नये मील पत्थर कायम किए। हरियाणा के बड़ौदा गांव में जाट परिवार में जन्मे उस विलक्षण चरित्र-पुरुष ने समग्र भारत में जैनत्व को नये आयाम प्रदान किए थे। उन्होंने जैन धर्म को जनधर्म बनाने का भगीरथ कार्य किया था। वेश्याओं को श्राविका बनाया। मुसलमानों को सद्धर्म सिखाया। पटियाला के कौऊंसिल प्रैसीडैण्ट सरदार गुरमुख सिंह को जैनत्व सिखाया। अहीर, जाट, गुज्जर, माली उनके चरण-चंचरीक बने। बड़े-2 आचार्यों ने अपनी हार्दिक श्रद्धा उनको अर्पित की। संयम के

मानदण्ड बने उस महापुरुष ने बड़ौदा की माटी से अनेक मुनि हीरे निकाले। अपनी समाचारी के प्रति आस्था और परिपालना में वे सदा अप्रमत्त थे। उस युगपुरुष के पदचिह्नों का अनुकरण कर हजारों लाखों आत्माओं ने कल्याण किया था।

उसी युग प्रधानता की कड़ी में व्याख्यान वाचस्पति गुरुदेव श्री मदनलाल जी म. जाज्वल्यमान नक्षत्र बनकर चमके थे। हरियाणा के राजपुर ग्राम में जन्में, दिल्ली में पले और यौवन की दहलीज में पूज्यपाद श्री छोटे लाल जी म. के पौत्र शिष्य तथा पूज्यपाद बहुसूत्री श्री नाथूलाल जी म. के शिष्य के रूप में दीक्षित हुए।

स्थानकवासी समाज के निर्विवाद अग्रणी नामवर मुनिराज रहे पर पदलिप्सा से दूर रहकर सबको सहयोग देते रहे, सबका मार्ग दर्शन करते रहे। प्रचार के प्रबल हिमायती थे परन्तु आचार की मजबूत नींवों के निर्मापक भी। जिन्दगी भर के पूजनीय, प्रेमी, अनुयायी साथियों को इसलिए छोड़ना पड़ा, क्योंकि उन्हें संयम और समाचारी से सर्वाधिक प्रेम था। अन्य संघ का मुनि यदि संयमी था तो उन्होंने अपना समझा, अपना निकटस्थ मुनि भी यदि संयम में कमतर दिखाई दिया तो उससे किनारा कर लिया। जीवन की सन्ध्या में जब कैंसर जैसी महाव्याधि से पीड़ित हुए तब भी संयम के नियमोपनियमों में दुर्बलता नहीं आने दी। सदोष चिकित्सा नहीं ग्रहण की। अत्यन्त समता भाव से जीवन लीला समेटी और आने वाली पीढी को अपना संयम-सार सौंपकर अनन्त में विलीन हो गए।

संयम की धर्मधारा के अग्रिम पुरोधा पूज्यपाद शासन प्रभावक संघशास्ता श्रद्धेय गुरुदेव श्री सुदर्शन लाल जी म. ने नए युग की आवाज को हर प्रकार से नजर अन्दाज कर संयम और चारित्र को ही सदा अधिमान दिया। रोहतक में बाबू चन्दगी राम जी वकील सा. तथा सुन्दरी देवी के सुपुत्र के रूप में जन्में पूज्य गुरुदेव का प्रारम्भ से ही संयम प्रधान मुनि परम्परा से साक्षात्कार होता रहा था। अपने

पितामह श्री जग्गूमल जी म. की दीक्षा के बाद स्वयं की भी दीक्षा के लिए कटिबद्ध हुए, वाच. गुरुदेव श्री मदन लाल जी म. की चरण-शरण मिली। अपने प्रतिभा बल से विविध विषयों का गहनतम ज्ञान प्राप्त किया। प्रवचन क्षेत्र को एक क्रान्तिकारी स्वरूप प्रदान किया। अपने बाबा जी म. की सेवा में जीवन की आहुति दी और संयम विरोधी हवाओं में संयम का परचम उठाकर चलते रहे। अपने को नींव के पत्थर की मानिन्द गुमनाम रखना पसन्द कर लिया पर सस्ती प्रसिद्धि के लिए अपनी समाचारी से एक लकीर भी इधर उधर नहीं हुए। अपने गुरुभ्राता संथारा साधक घोर तपस्वी श्री बदरी प्रसाद जी म. की संयम पोषक हर बात पर चिन्तन करके क्रियान्वित किया और करवाया। अपने मुनि मण्डल को संयम प्रधान भावना देकर वे विदा हो गए, उनकी वह मशाल अब भी दिग्-दिगन्तों को रोशन कर रही है।

हम सब श्रावक श्राविकाओं को भी उसी संयम की कद्र करते हुए भगवान् महावीर के उज्ज्वल आदर्शों को विश्व क्षितिज पर चमकाना है। हम ये न सोचें कि समाचारी केवल साधु साध्वियों का ही विषय है। इसे हम भी अपना विषय बना सकते हैं। जब प्रभु महावीर ने चार तीर्थों की स्थापना की है तो हम भी तो तीर्थ हैं। हमारा तीर्थ-धर्म हमें अन्य तीर्थों के प्रति सम्मान तो सिखाता ही है साथ ही साथ उन धर्मों की रक्षा का दायित्व भी हमें सौंपता है। ये ठीक है कि साधु साध्वी के प्रति अनावश्यक टिप्पणी हमें बिल्कुल भी नहीं करनी है। हमें आशातना से बचना है और ये भी ध्यान रखना है कि हम पहले अपने जीवन स्तर को ऊंचा उठाएँ। नैतिकता, प्रामाणिकता को अपना अंग बनाएँ। बारह व्रत, चौदह नियमों के सच्चे अभ्यासी और परिपालक बने। जब हम में अपनी मर्यादाओं का ज्ञान और आचरण होगा तभी तो हम अपने संघ-शासन के गौरव की रक्षा कर सकेगें। हम अपने आप में छलनी की तरह छिद्रों से भरपूर हों तो हमें किसी ओर के छिद्र देखने का कोई अधिकार नहीं है।

सबका तो मुदावा कर डाला, अपना ही मुदावा कर न सके।
सबके ही गिरेबाँ सी डाले, अपना ही गिरेबाँ भूल गए ॥

आज जैन श्रावकों के सामने दो प्रकार की चुनौतियाँ हैं। एक तरफ ऐसा सन्यासी वर्ग है जो अपनी हर सीमा तोड़कर गृहस्थों जैसा या उनसे भी अधिक सुविधा भरा-ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा है और फिर भी अपने को वेष और भाषाई सौन्दर्य से पूजनीय बता रहा है। दूसरी तरफ ऐसा भी मुनि समूह है जो श्रावकों में प्रत्येक साधु-साध्वी के प्रति दुर्भावना भर रहा है जिससे गृहस्थ जब-2 सन्त चरण में आता है अपनी श्रद्धा ज्ञान या नियमावली को पुष्ट करने के बजाय मुनियों के छद्मस्थता जन्य दोषों की ही तलाश करता रहता है और फिर तुरन्त फतवा दे देता है कि ये साधु साधु नहीं है। मात्र निन्दा वैर विरोध के अलावा उस बेचारे श्रावक को आत्म कल्याण की फुर्सत ही नहीं मिलती। अतः इन दोनों अतिवादों से श्रावकों को बचने की जरूरत है। अन्यथा शिथिलतावाद और सम्प्रदायवाद के दो पाटों के बीच सारी समाज पिस जाएगी। हम बहुमूल्य विरासत के वारिस हैं इसकी सुरक्षा के प्रति हम सब कटिबद्ध होगें तभी हमारा भविष्य सुरक्षित रह सकेगा। देखिए आज जैन समाज की क्या Position है। सरकारी आँकड़ों के हिसाब से हम समस्त भारतीय जनगणना के ½ प्रतिशत में भी नहीं आते, यद्यपि हमारी वास्तविक संख्या एक प्रतिशत से भी ऊपर है। उसमें भी हम दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापन्थी के रूप में बंटे हुए हैं। हम स्थानकवासी भी 10-20 सम्प्रदायों में विभाजित हैं। यदि ये विभाजन इसी तरह बढ़ता रहा तो कल्पना करना कि 100-50 घरों की छोटी सी समाज का क्या हस्र होगा? सभी सम्प्रदाय 2-2, 4-4 घरों को बाँट लेगी और आपसी स्नेह भाव टुकड़े-2 हो जाएगा। कोई भी अच्छा काम करने की या तो भावना संभावना ही नहीं बनेगी। और यदि कभी बन भी गई तो टूटी फूटी विभाजित समाजें कैसे किसी कार्य को सम्पन्न कर सकेंगी।

छत की ईंटे ही अगर बारूद से मिल जाएँगी,
तो यकीनन घर की नीवें दूर तक हिल जाएँगी ॥

यू ही दीवारें अगर आँगन में अब उठती रही,
देख लेना रोशनी की कुहनियाँ छिल जाएँगी ॥

चिथड़ा-2 होके बिखरेगें हमारे जिस्म ही,
आपकी बातें तो कपड़ों की तरह सिल जाएँगी ॥

अगर जैन समाज को अपनी पहचान कायम रखनी है तो इसके दो ही तरीके हैंः— पहला तो ये है कि हमारा साधु समाज अपनी समाचारी, संयम, मर्यादा को मुस्तैदी से निभाए तथा दूसरा तरीका ये है कि श्रावक समाज अपनी एकता को बनाए रखे। किसी भी प्रकार की खेमेबन्दी से स्वयं को बचाए रखे। आज भी जैन साधु के त्याग तप की सारा जमाना दुहाई देता है अतः साधु समाज को ये सोचना पड़ेगा कि क्या हम अपनी साख को कायम रखने में सफल हैं या नहीं? दूसरे, श्रावक समाज को कृत संकल्प होना होगा कि हमें किसी साधु विशेष के प्रति वफादार न होकर जैनत्व से जुड़ना होगा। जैन साधु, जैन सस्कृति, जैन आचार हमारे लिए प्रथम रहेगा। कोई सन्त या वर्ग विशेष नहीं। इन्हीं भावनाओं को शब्द देते हुए एक भजन की पंक्तियाँ बोलेगें—

तर्जः— डोली सजा के रखना-

घटने कभी न देगें महावीर की विरासत
आने कभी न देगें हम धर्म में सियासत ॥टेक॥

1. निज स्वार्थ वृत्ति को हम रोके सदा रखेगें,
धर्मार्थ आए धन को नहीं लोभ से लखेगें
अपनी नजर में होगा अस्पृश्य ये गिलाजत ॥

2. हम जातिवाद हरगिज स्वीकृत नहीं करेंगे,
लेकिन शराब, चोरी और माँस से डरेगें
निज धर्म संस्कृति पर आने न देगें लानत ॥

3. लड़ना लड़ाना मरना और मारना किसी को,
नहीं सभ्यता मनुजता तड़पाना जिन्दगी को
न करें न करने देगें धरती पर कल्लोगारत ॥

4. इन्सान और पशु क्या कीड़े या घास तक भी,
अधिकार और इच्छा रखते हैं जिन्दगी की
खुद जिएँ और सबको जीने की दे इजाजत ॥

5. क्या दिगम्बर श्वेताम्बर 22 या तेरापंथी,
धागे अलग-2 हैं लेकिन एक है ग्रंथि
नहीं देगें टूटने हम इकलास की ये ताकत ॥

यदि हम अपने धर्म के प्रति ईमानदार रहें तो कोई भी दुनिया की ताकत हमारा बाल बाँका नहीं कर सकती है। हमें पक्का विश्वास है कि ये महा पर्व हमें इस योग्य बना देगें कि हम अपने से ही कह सकेगें–

मैं ही बना लूंगा जीवन को अपने आप महान्,
विराजित है मुझमें भगवान्
और किसी के हाथ नहीं है मेरा नव निर्माण,
विराजित है मुझमें भगवान्

आज पर्यूषण का 7वां दिन है, कल सम्वत्सरी पर्व है। कल सबके व्यापारिक प्रतिष्ठान बन्द रहें, बच्चे स्कूलों से छुट्टी लें। कल पूर्णतया स्थानक के लिए धर्मध्यान के लिए समर्पित हो जाएँ। घर के सभी सदस्य पौषध करने का मन अवश्य बनाएँ। कल के दिन पौषध का विशेष महत्व है, बहनें भी पौषध अवश्य करें। कल सम्वत्सरी-प्रतिक्रमण भी परम आवश्यक है। साल भर के पाप दोषों की आलोचना करके उनकी शुद्धि करनी है।

इन सात दिनों में हमने कल्पसूत्र की अर्थ वाचना-भावार्थ वाचना की। पहले चार दिन भगवान् महावीर की जीवनी थी। पांचवें दिन शेष 23 तीर्थंकरों का विवरण रहा। छठे दिन सुधर्मा स्वामी से प्रारम्भ कर देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण तक की स्थविरावली का चित्रण किया गया। और आज सातवें दिन पर्यूषण समाचारी के साथ समाचारी के आराधक कुछ पूज्य संयमी पुरुषों को वन्दन किया गया। कल्पसूत्र तो पूर्ण हो गया। इसमें आगम विपरीत कोई प्ररूपणा हो गई हो तो अरिहन्त, सिद्ध, गुरु भगवन्तों की साक्षी से तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं।

कल प्रातः तो अन्तगड़ सूत्र की वाचना होगी ही परन्तु मध्याह्न में बृहद् आलोयणा का उच्चारण और स्पष्टीकरण किया जाएगा। आप सबकी धर्मश्रद्धा को देखकर हमें हार्दिक संतुष्टि है। आपके प्रबुद्ध क्षेत्र के प्रबुद्ध श्रावक श्राविकाओं का सहयोग ही हमारे लिए अवलम्ब बना है। बस कल का दिन बाकी है, ये आपकी परीक्षा है। आपको शत प्रतिशत अंक मिलें, इसी मंगल भावना के साथः

–जय जिनेन्द्र

अन्य उपयोगी भजन

तर्जः–चन्दन सा वदन चंचल चितवन...

जय जय बोलो कलिमल धोलो श्री जैन धर्म की जय जय हो
सुख शान्ति मिले, भय भ्रान्ति टले, निःश्रेयस और अभ्युदय हो ॥टेक॥

1. प्रभु ऋषभदेव ने प्रकट किया महावीर ने अन्तिम रूप दिया
आचार्य परम्परा ने इसको जीवित रखा संशुद्ध किया
आचार बढा सुप्रचार बढ़ा गया देश सकल ये निर्भय हो ॥

2. सम्पूर्ण अहिंसा अनेकान्त अपरिग्रह इसकी नींव बने
मन वाणी काया तीनों से, नहीं तीनों किसी के कोई हने
नहीं हो विवाद, नहीं हो विषाद, नहीं गैर जरूरी संचय हो ॥

3. ले देव गुरु और धर्म शरण हम आत्म लक्ष्य को पा सकते,
पुरुषार्थ पराक्रम से सारा कर्मों का भार खपा सकते,
आत्मा है अमर ये ही ईश्वर, जब होता पापों का क्षय हो ॥

4. नव तत्वों को जान हृदय से उन पर श्रद्धा लानी है,
ढल जाएँ आचरण में दोनों ऐसी दृढता अपनानी है,
वैराग्य त्याग, से जाए जाग, सौभाग्य अगर दृढ निश्चय हो ॥

5. बारह व्रत का पालन करना श्रावक का धर्म कहाता है,
त्रिकरण योग से व्रत पांचों मुनि यावज्जीव निभाता है,
नहीं शल्य रखें, संथारा करें, फिर मुक्ति शीघ्र निःसशंय हो ॥

तर्जः– इक प्यार का नगमा है-

जन-2 के लिए देता संदेश निराला है, महापर्व पर्यूषण ये लाया अनुपम उजाला है ॥टेक॥

1. दुनिया में आग लगी भोगों की विकारों की,
सबको ही जरूरत है धार्मिक बौछारों की,
समता से सभी बुझती तन मन की ज्वाला है ॥

2. तृष्णा के चक्कर में मानव का मन घूमा,
भौतिक मदिरा पीकर है मस्ती में झूमा,
अपने हाथों जीवन दूषित कर डाला है ॥

3. पावन गुरुदेवों के वचनों पर श्रद्धा कर,
कुछ जीवन ये बदले वचनों को अपनाकर,
गुण सुमनों की हमको चुननी इक माला है ॥

4. आलस को छोड़ सकें मन ऐसा बनाना है,
तप संयम में अपने जीवन को लगाना है,
पुण्यवान वही जिसने निज धर्म को पाला है ॥

5. इस अवसर पर अपने मन की वो सफाई हो,
आपस में नहीं जिससे ईर्ष्या व लड़ाई हो,
अब भर-2 कर पीना हमें प्रेम का प्याला है ॥

तर्जः– बहारो फूल बरसाओ...

प्रभु का मार्ग है पाया तो ये संसार क्या करना,
मुसाफिर को सफर में है उठाकर भार क्या करना ॥टेक॥

1. है जिनका खाक में बिस्तर नहीं इच्छा पलंगों की
पाक बेदाग चादर को जरूरत है न रंगों की,
हुआ जब इश्क अपने से किसी से प्यार क्या करना ॥

2. जिन्हें सन्तोष प्यारा है उन्हें मिट्टी है धन दौलत,
जहाँ निज रूप को देखा वहाँ क्या रूप की कीमत,
जिन्हें एकान्त प्यारा है उन्हें घर बार क्या करना ॥

3. सजाया अपने जीवन को महाव्रत पांच कर धारण,
विनय सेवा तपस्या के हैं पहने जिसने आभूषण,
नहीं है जिस्म से रगवत उन्हें शृंगार क्या करना ॥

4. क्या पंखें और हीटर क्या अगर तप से मुहब्बत है,
रहे जो लीन भक्ति में क्या बिजली की जरूरत है,
नहीं जूता तो ले करके है मोटर कार क्या करना ॥

5. कमाई और क्या करनी रत्न तीनों कमाए हैं,
सहारे और सब झूठे, शरण जब चार पाए हैं,
जिन्हें उस पार जाना है उन्हें इस पार क्या करना ॥

आठवां प्रवचन–महापर्व सम्वत्सरी

तर्जः– नैन कटोरे काजल डोरे...

सम्वत्सरी है खुशी ही खुशी है पर्व धर्म का आया है...
ओ पर्व धर्म का आया है अरिहन्तों ने फरमाया है ॥टेक॥

1. युद्धवीर हैं युद्ध में चढ़ते लिए हौंसला पर्वत सा,
जैन वीर हैं तप में बढते भूख प्यास की परवाह क्या,
तन को भुलाकर, मन को मनाकर, मोर्चा खूब लगाया है ॥

2. नमोकार का जाप हमारी करता दूर समस्याएँ,
इसके दम पर ही होती हैं अपनी पूर्ण तपस्याएँ,
जो पाँच पद हैं, महाशान्ति प्रद हैं, अविचल ध्यान लगाया है ॥

3. संघ संगठन का है पर्व ये भेदभाव सब भूलेगें,
देगें नहीं दुर्भाव किसी को, नहीं किसी से भी लेगें,
अपनेपन का प्रेममय मन का भाव विशुद्ध बनाया है ॥

4. पश्चात्ताप अतीत पाप का आगे का कुछ नियम करें,
धर्मध्यान में बढ़ने का हम हरदम उद्यम परम करें,
पाप घटाएँ, धर्म बढाएँ, यही इसने सिखलाया है ॥

5. सबसे माँगे क्षमा सभी को शुद्ध भाव से क्षमा करें,
पिछले झगड़े शान्त करें और कोई ना झगड़ा नया करें,
वैर है दूषण, क्षमा है भूषण, सजें तो पर्व मनाया है ॥

अनन्त चौबीसी, शासनपति महावीर तथा अपने धर्म गुरुओं को वन्दना करते हुए आप सब भाई बहनों को जय जिनेन्द्र!

आज का दिन अत्यन्त मंगलमय है, कल्याणकारी है, सुखद है, शुभ है। वर्ष भर पूर्व भी हमने इसे मनाया था और आज फिर मना रहे हैं। इसे मनाने का मजा ही कुछ और है। होली, दीवाली, दशहरा,

ईद, क्रिसमस, गुरुपर्व से भी अधिक उत्तम एवं उपयोगी ये पर्व है। वैसे तो हर धर्म के पर्वों को उनके अनुयायी उत्तम मानते हैं पर यदि हम तटस्थ होकर विचारें तो उन पर्वों में वो गहनता और पारमार्थिकता नहीं है जितनी इन पर्यूषण पर्वों में है। क्योंकि उन पर्वो में केवल तन और मन का उल्लास बढ़ाया जाता है जबकि इन पर्वों में तन मन के उल्लास का परित्याग कर आत्म-विकास और आत्मोल्लास का अभियान छेड़ा जाता है।

आज के दिन आत्मालोचना का काम अत्यन्त आवश्यक होता है अर्थात् गुरुदेवों के सामने अपने दोषों को प्रकट करना आलोचना है। वैसे तो हमें अपने दोषों को सदा ही गुरुओं के सामने रखना चाहिए, यदि प्रति समय प्रतिदिन संभव न हो तो हर पन्द्रह दिन में अपने पापों की गठरी गुरुओं के द्वार पर रखकर हमें हल्का हो जाना चाहिए। मानव मन की दुर्बलता के कारण हर 15 वें दिन आलोचना न हो सके तो हर चौमासी पर गुरुओं के समक्ष आलोचना हो जाए तो भी आत्मा की शुद्धि शीघ्र हो सकती है। पर मानव मन इतना उलझा हुआ है कि चार महीने में भी वह अपने दोष हरने की हिम्मत जुटा नहीं पाता, ऐसे में प्रभु महावीर स्वामी ने फरमाया है कि हे आत्मन्! कम से कम वर्ष में एक बार तो अपनी आलोचना कर ही ले।

खुदा को सौंप दो ऐ 'जोश' पुश्तारा गुनाहों का।
चलेंगे अपने सर पे रखके यह बारे-गरां कब तक ॥

भगवती सूत्र में वर्णन है कि प्रतिक्रमण के 3 रूप हैं– आलोचना, संवर और प्रत्याख्यान। अतीत काल की आलोचना होती है, वर्तमान काल में संवर किया जाता है तथा आगामी काल के लिए प्रत्याख्यान किया जाता है। हम सम्वत्सरी के प्रतिक्रमण को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं। राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मुम्बई जैसे इलाकों में आज शाम को हजारों-2 की तादाद में प्रतिक्रमण करने वाले श्रावक श्राविका उपस्थित रहते हैं। जिस प्रकार आपने देखा होगा ईद की

नमाज पर मस्जिदों में जगह नहीं मिलती, लोग सड़कों पर आ जाते हैं, इसी तरह सम्वत्सरी के दिन प्रतिक्रमण के समय वहाँ भीड़ हो जाती है, जैन समाज का बच्चा-2 उपस्थित होता है। यह एक बहुत उत्तम सांस्कृतिक घटना है मगर इस प्रतिक्रमण की भूमिका भी तो आलोचना ही है। यदि आलोचना हो जाए तो प्रतिक्रमण भी सार्थक है अन्यथा वह एक शारीरिक व्यायाम या वाचिक परिश्रम मात्र है। आलोचना के बाद प्रतिक्रमण ही नहीं, संथारे जैसा महान् कार्य भी सार्थक और सफल माना जाता है। जीवन भर की आलोचना 'भाव संथारा' है, जीवन भर का आहार त्याग द्रव्य संथारा है, दोनों का होना पूर्ण संथारा है।

श्री उत्तराध्ययन सूत्र के 29वें अध्ययन में आलोचना के सम्बन्ध में गौतम स्वामी तथा भगवान् महावीर के प्रश्नोत्तर हैं। गौतम स्वामी ने पूछा— हे भगवन्! आलोचना करने वाले जीव को किस फल की प्राप्ति होती है तब श्रमण महावीर ने फरमाया कि आलोचना से मोक्ष मार्ग में विघ्न रूप अनन्त संसार बढ़ाने वाले माया, निदान तथा मिथ्यादर्शन— इन शल्यों का सफाया हो जाता है, जीवन में सरलता आती है। सरल आत्मा, स्त्रीत्व और नपुंसकता रूप कायरता को नहीं बटोरता तथा पुराने कुभावों को छोड़ देता है।

सांसारिक उलझनों में उलझे मानव के लिए आलोचना ही ऐसा उपाय है जिसके द्वारा वह मन को हल्का कर सकता है। अपने स्वरूप को निहार सकता है वर्ना जीवन में पर्दे पर पर्दा आता रहेगा तथा जीवन का प्रकाश ढकता जाएगा।

धृतराष्ट ने जीवन के आखिरी दौरे में एक तथ्य कहा था— मैं एक ऐसा अंधकूप था जिसमें पानी तो सूख गया था तथा ऊँची-2 घास से इस तरह ढक गया था कि किसी अनजान आदमी को पता भी नहीं चल सकता कि यहाँ कुआँ है, इसलिए मेरे पास आने वाले हर आदमी को मुझसे धोखा ही धोखा मिलता था। क्या बहुत सारे आज के धार्मिक ऐसे नहीं हैं?

ये असंगति जिन्दगी के द्वार सौ-2 बार रोई।
बाँह में है और कोई चाह में है और कोई ॥

आज के हालात इतने विषम होते जा रहे हैं कि सामान्य मानव चाहकर भी अपने दिल को खोलकर नहीं रख सकता। उसे खतरा रहता है कि पता नहीं अपने सम्बन्ध में सत्य प्रकट कर दूंगा तो दुनिया मुझे जीने भी देगी या नहीं?

फरिश्ते भी आसमाँ से अगर उतर आँएगें।
वो भी सच बोले तो मारे जांएगें ॥

कितनी विडम्बना है कि धार्मिक व्यक्ति को भी सत्य कहते हुए सौ बार सोचना पड़ता है।

कोई तो वजह होगी कोई यूं बेवफा नहीं होता।
गुफ्तगू उनसे रोज़ होती है मुद्दतों सामना नहीं होता।
जी बहुत चाहता है सच बोलें क्या करें हौंसला नहीं होता।
रात का इन्तजार कौन करें, यहाँ दिन में क्या नहीं होता ॥

आलोचना वही कर सकता है जिसे अपनी आत्मा का ख्याल होगा, अपने परभव का विचार होगा और कर्म बन्ध का डर होगा।

रत्नाकर सूरि एक महान् आचार्य हुए हैं। उन्होंने 25 श्लोक प्रमाण एक रचना लिखी है जिसमें उन्होंने आत्मालोचना को बहुत ऊँचे स्तर पर पहुँचाया है। उस स्तोत्र का एक-एक श्लोक एक गहरी आत्मानुभूति से भरा हुआ है। उसका हिन्दी अनुवाद पूज्यपाद गुरुदेव श्री राम प्रसाद जी म. ने किया है जो अत्युत्तम कोटि की रचना है। समय-2 पर भिन्न-2 साधकों ने आलोचना-प्रधान काव्य रचे हैं सबकी अपनी उपयोगिता और महत्ता है।

परन्तु आजकल श्रावक श्री रणजीत जी कृत "बृहद् आलोयणा" का प्रचलन सबसे अधिक है। इस रचना की विशेषता ये है कि इसमें

लगभग 110 दोहों का संकलन है। ये दोहे कुछ तो लेखक ने स्वयं बनाए हैं तथा कुछ इधर उधर से संगृहीत किए हैं। भाव बिल्कुल सरल हैं। इसके साथ-2 इसमें लेखक ने 18 पापों की विस्तृत व्याख्या करते हुए कहा है कि यदि मैंने किसी भी पाप का सेवन किया हो तो मैं अन्तर की गहराई से उनसे दूर होने का प्रयत्न करता हूँ तथा पिछले पाप की तस्स मिच्छामि दुक्कड़म् लेता हूँ।

रचना बहुत व्यापक एवं हृदय ग्राही है और सम्वत्सरी के दिन दोपहर के समय इसका सामूहिक वाचन होता है। आज हम इसका वाचन करेगें तथा साथ ही कुछ पदों की बीच-2 में व्याख्या करने का प्रयास करेगें।

जैन समाज में बृहद् आलोयणा के बारे में ये धारणा है कि जो व्यक्ति प्रतिक्रमण याद नहीं कर पाते या सुन नहीं सकते वे यदि इस रचना को पढ लें तो उन्हें प्रतिक्रमण-सा ही लाभ मिल जाता है। वाचन करने से पूर्व ये बतलाना भी जरूरी है कि हम उन शब्दों को केवल पढ़े ही नहीं, उन्हें अपने अन्तर से भी जोड़ें। ऐसा न हो कि ये भी एक रुटीन बन जाए। मनोयोग और उपयोग से ही ये आलोचना भाव आलोचना बन पाएगी। ऐसा न हो कि हमारी 'मिच्छामि दुक्कड़म्' एक ड्रामा तमाशा या छलावा बन जाए।

आपने सुना होगा— गुरु शिष्य की एक जोड़ी किसी कुम्हार के घर ठहर गई। वहाँ नये पुराने काफी घड़े बने हुए थे। शिष्य को शरारत सूझी— एक कंकरी उठाई और एक मटके पर निशाना साधकर जोर से दे मारी, मटका फूट गया, कुम्हार देखता का देखता रह गया। गुरुदेव उसे कुछ कहने ही वाले थे कि वह जोर से बोल पड़ा— तस्स मिच्छामि दुक्कड़म्। गुरुदेव उसकी उद्दण्ड तथा छद्म प्रकृति को जानते थे। कुम्हार अभी अनभिज्ञ था। थोड़ी देर रुककर उसने फिर वही काम किया— कंकरी उठाई, निशाना साधा और एक मटके का कल्याण कर दिया। गुरु मौन रहे, कुम्हार कुलबुलाया जरूर पर लिहाज मान गया। फिर भी शिष्य को शर्म नहीं आई, तीसरी बार फिर मटका फोड़ दिया और

उसके ऊपर 'तस्स मिच्छामि दुक्कड़म्' का राग अलाप दिया। कुम्हार से रहा नहीं गया। उसने भी एक कंकरी उठाई और उस चेले के कान के निचले हिस्से पर रखकर जोर से दबा दी, चेला चीख उठा और कुम्हार तुरन्त कहने लगा– तस्स मिच्छामि दुक्कड़म्। उसने जल्दी-2 दो तीन बार उसके कान को दबाया और मिच्छामि दुक्कड़म् बोलता गया। दुखी चेला कहने लगा– तेरे मिच्छामि दुक्कड़म् से मेरे कान का दर्द थोड़े ही घट गया। कुम्हार भी तत्काल बोल पड़ा– क्या तेरे मिच्छामि दुक्कड़म् से मेरे घड़े जुड़ जांएगे। बेचारा चुप हो गया और एक अच्छी शिक्षा मिल गई।

हमें भी ध्यान रखना है कि हमारी हर क्रिया ढोंग न बने। आओ अब आलोयणा प्रारम्भ करते हैं–

दोहाः–

1. सिद्ध श्री परमात्मा अरिगंजन अरिहन्त।
   इष्ट देव वन्दूं सदा भय भञ्जन भगवन्त ॥

2. अरिहन्त सिद्ध सुमरूं सदा आचारज उवज्झाय।
   साधु सकल के चरण को वन्दूँ शीश नमाय ॥

3. शासन नायक सुमरिये, भगवन्त वीर जिनन्द।
   अलिय विघन दूरे हरे, आपे परमानन्द ॥

4. अंगूष्ठे अमृत बसे, लब्धि तणा भण्डार।
   श्री गुरु गौतम सुमरिये, वांछित फल दातार ॥

5. श्री गुरुदेव प्रसाद से, होत मनोरथ सिद्ध।
   ज्यूं घन बरसत बेलि तरू, फूल फलन की वृद्ध ॥

6. पञ्च परमेष्ठि देव को, भजन पूर पंचान।
   कर्म अरि भाजे सभी, होवे परम कल्याण ॥

7. श्री जिन युग पद कमल में मुझ मन भ्रमर बसाय।
   कब ऊगे वो दिन-करु, श्रीमुख दरशन पाय ॥

8. प्रणमी पद-पंकज भणी, अरिगंजन अरिहन्त।
कथन करुँ अब जीव को, किञ्चित् मुझ विरतन्त ॥

इन दोहों में पञ्च परमेष्ठि को, प्रभु महावीर को, गौतम स्वामी तथा अपने गुरुदेव को वन्दन करते हुए कहा है कि हम अपनी जीवात्मा का स्वरूप समझें।

9. आरम्भ विषय कषाय वश, भमियो काल अनन्त।
लख चौरासी योनि से, अब तारो भगवन्त ॥

10. देव गुरु धर्म सूत्र में, नव तत्वादिक जोय।
अधिका ओछा जे कह्या, मिच्छा दुक्कड़म् मोय ॥

11. मोह अज्ञान मिथ्यात्व को, भरियो रोग अथाग।
वैद्यराज गुरु शरण से, औषध ज्ञान वैराग ॥

12. जे मे जीव विराधिया, सेव्या पाप अठार।
प्रभु तुम्हारी साख से, बार-2 धिक्कार ॥

13. बुरा-2 सबको कहूँ, बुरा न दीसे कोय।
जो घट शोधूं आपणो, तो मोसुं बुरा न कोय ॥

14. कहवा में आवे नहीं, अवगुण भरया अनन्त।
लिखवा में क्यों कर लिखूं, जानो श्री भगवन्त ॥

15. करुणानिधि कृपा करी, कठिन कर्म मोय छेद।
मोह अज्ञान मिथ्यात्व को, करजो ग्रंथि भेद ॥

16. पतित-उधारण नाथ जी, अपनो विरुद विचार।
भूल चूक सब माहरी, खमिये बारम्बार ॥

17. माफ करो सब माहरा, आज तलक ना दोष।
दीनदयाल देवो मुझे, श्रद्धा शील सन्तोष ॥

18. आतम निन्दा शुद्ध भणी, गुणवन्त वन्दन भाव।
राग-द्वेष पतला करी, सब से खिमत खिमाव ॥

हे प्रभो! मेरी आत्मा अनादि काल से विषय कषायों में उलझती रही है, उनसे मुझे मुक्त कीजिए। मोहनीय कर्म का भयंकर रोग मेरी आत्मा को दुर्बल बना रहा है, अब तो गुरुदेव ही वैद्य बनकर इस रोग का निवारण करेंगे। हे! भगवन्, मेरी सबसे बड़ी कमी रही है कि मैनें निरन्तर अठारह पाप किए फिर भी औरों को बुरा कहता रहा। यदि मैं एक बार भी अपने अन्दर झांक कर देख लूं तो मैं संसार का सबसे निकृष्ट प्राणी हूँ। हे वीतराग देव, आपका विशेषण तो पतितोद्धारक है, अतः मुझ पतित का उद्धार कर दो। हे परमात्मन्, ये मेरी अटल श्रद्धा है कि आत्म निन्दा, गुणवान् की वन्दना, राग-द्वेष-मन्दता और क्षमापना ये चार तत्व ही कल्याणकारी हैं।

19. छूटं पिछला पाप से, नवा न बांधूँ कोय।
श्री गुरुदेव प्रसाद से, सफल मनोरथ होय ॥

20. परिग्रह ममता तजी करि पञ्च महाव्रत धार।
अन्त समय अलोयणा, करुं संथारो सार ॥

21. तीन मनोरथ ए कह्या, जो ध्यावे नित मन्न।
शक्ति सारे बरते सही, पावे शिव सुख धन्न ॥

22. अरिहन्त देव निर्ग्रन्थ गुरु, संवर निर्जरा धर्म।
केवलि-भाषित शास्त्र यही जैन मत मर्म ॥

23. आरम्भ विषय कषाय तज, शुद्ध समकित व्रत धार।
जिन आज्ञा परमाण कर, निश्चय खेवो पार ॥

24. क्षण निकमो रहणो नहीं, करनो आतम काम।
भणनो गुणनो सीखनो, रमनो ज्ञान आराम ॥

25. अरिहन्त सिद्ध सब साधुजी, जिन आज्ञा धर्म सार।
माँगलिक उत्तम सदा निश्चय शरणा चार ॥

26. घड़ी-2 पल-2 सदा, प्रभु स्मरण को चाव।
नर भव सफलो जो करे, दान शील तप भाव ॥

साधक अपनी आत्मा से कहता है कि पुराने कर्मों की निर्जरा हो जाए और नए कर्मों का बंध न हो, यही मेरी इच्छा है। हे पावन प्रभु, आरम्भ परिग्रह को कम करना, मुनि दीक्षा लेना तथा संथारा ग्रहण करना ये श्रावक के तीन मनोरथ हैं। इन मनोरथों के चिन्तन से मुक्ति-प्राप्ति सरल होती है। हे प्रभु! मेरा एक भी क्षण निरर्थक न जाए। आत्म लक्ष्य पाने के लिए मैं सदा ज्ञान ध्यान सीखता रहूँ। मैं प्रतिपल भगवान् का स्मरण करता रहूँ तभी मेरा मानव जन्म सफल होगा।

दोहाः–

1. सिद्धां जैसा जीव है, जीव सोई सिद्ध होय।
कर्म मैल का आन्तरा, बूझे बिरला कोय ॥

2. कर्म पुदगल रूप है, जीव रूप है ज्ञान।
दो मिलकर बहुरूप हैं बिछड़्या पद निर्वाण ॥

3. जीव कर्म भिन्न-2 करो, मनुष्य जन्म को पाय।
ज्ञानातम वैराग्य से, धीरज ध्यान लगाय ॥

4. द्रव्य थकी जीव एक है, क्षेत्र असंख्य प्रमाण।
काल थकी सर्वदा रहे, भावे दर्शन ज्ञान ॥

5. गर्भित पुद्गल पिण्ड में, अलख अमूरति देव।
फिरे सहज भवचक्र में, यह अनादि की टेव॥

6. फूल अतर, घी दूध में तिल में तेल छिपाय।
यूं चेतन जड़ करम संग, बंध्यो ममत दुख पाय ॥

7. जो जो पुदगल की दशा, ते निज माने हंस।
या ही भरम विभावते, बढ़े करम को वंस ॥

8. रतन बन्ध्यो गठरी विषे सूर्य छिप्यो घन माँहि।
सिंह पिंजरा में दियो, जोर चले कछु नांहि ॥

9. ज्यूं बन्दर मदिरा पियाँ, बिच्छू डंकित गात।
भूत लग्यो कौतुक करे, त्यों कर्मों को उत्पात ॥

10. कर्म संग जीव मूढ़ है, पावे नाना रूप।
कर्म रूप मल के टले, चेतन सिद्ध सरूप ॥

11. शुद्ध चेतन उज्ज्वल दरव रह्यो कर्म मल छाय।
तप संयम से धोवतां ज्ञान ज्योति बढ़ जाय ॥

12. ज्ञान थकी जाने सकल, दर्शन श्रद्धा रूप।
चारित्र से आवत रुके, तपस्या क्षपण सरूप ॥

13. कर्म रूप मल के शुधे, चेतन चांदी रूप।
निर्मल ज्योति प्रकट भयाँ, केवल ज्ञान अनूप ॥

14. मूसी पावक सोहगी, फूंका तणो उपाय।
राम चरण चारों मिल्या, मैल कनक को जाय॥

15. कर्म रूप बादल मिटे, प्रगटे चेतन चन्द।
ज्ञान रूप गुण चांदनी, निर्मल ज्योति अमन्द ॥

16. राग द्वेष दो बीज से, कर्म बन्ध की व्याध।
ज्ञानातम वैराग्य से, पावे मुक्ति समाध ॥

इन दोहों में लेखक आत्मा और कर्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहता है कि सिद्ध और आत्मा दोनों का स्वरूप एक जैसा है। अन्तर केवल कर्म का है। कर्म के संयोग से आत्मा नाना गतियों में भ्रमण करता है, यदि हमें इस संयोग को तोड़ना है तो ज्ञान और

वैराग्य का आश्रय लेना होगा। हमारी आत्मा स्वतन्त्र है, असंख्यात प्रदेशी है, अनादि अनन्त है तथा उपयोग रूप है। लेकिन कर्म पुदगल में लिपटने के कारण भवचक्र में घूम रही है। जैसे फूलों में इत्र, दूध में घी तथा तिलों में तेल छिपा रहता है इसी प्रकार इस शरीर में यह आत्मा विराजमान रहती है। मिथ्यात्व और अज्ञान के कारण आत्मा पुदगल के परिवर्तन को अपना परिवर्तन मान लेता है। यदि चीथड़ों में रत्न हो, बादलों के पीछे सूर्य हो, सिंह पिंजरे में कैद हो तो उनकी आभा कान्ति एवं शक्ति का आविर्भाव नहीं हो पाता ऐसे ही कर्मों की कैद में आत्मा की शक्ति प्रकट नहीं हो पाती। कर्म आत्मा को इस तरह नचाते हैं जैसे शराब पीने पर बन्दर को बिच्छु डंक मार दे और फिर उस पर भूत चढ जाए। आत्मा पर छाए कर्म-मैल को तप और संयम से धोया जा सकता है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप ये मुक्ति के उपाय हैं। वस्तु तत्व को ज्ञान से जानकर तथा दर्शन से उस पर श्रद्धा करके यह जीवात्मा नए कर्मों के आगमन को रोक देती है। तथा पूर्ववर्ती कर्मों को नष्ट कर सकती है। जैसे एक सर्राफ कुठली में मैले सोने को डालकर आग पर रखकर, उसमें सुहागा डालकर अपनी फूंक मार-2 सोने का मैला दूर कर देता है इसी प्रकार गुरुदेव भी आत्मा के मैल को दूर कर देते हैं। मूलतः तो राग और द्वेष के मिटाने से ही आत्मा को समाधि प्राप्त होगी।

17. अवसर बीत्यो जात है, अपने वश कछु होत।
पुण्य छतां पुण्य होत है, दीपक दीपक ज्योत ॥

18. कल्पृक्ष चिन्तामणि, इण भव में सुखकार।
ज्ञान वृद्धि इनसे अधिक, भव दुख भंजन हार ॥

19. राईमात्र घट वध नहीं, देख्या केवल ज्ञान।
यह निश्चय कर जान के, तजिये प्रथम ध्यान ॥

20. दूजा कभी नहीं चिन्तिये, कर्म बन्ध बहु दोष।
तीजा चौथा ध्याय के, करिये मन सन्तोष ॥

21. गई वस्तु सोचे नहीं, आगम वांछा नांहि।
वर्तमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जग माँहि ॥

22. अहो समदृष्टि जीवड़ा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर्गत न्यारो रहे, ज्यूं धाय खिलावे बाल ॥

23. सुख दुख दोनुं बसत हैं ज्ञानी के घट माँहि।
गिरि सर दीसे मुकर में भार भींजवो नांहि ॥

24. जो जो पुदगल फरसना, निश्चय फरसे सोय।
ममता समता भाव से, करम बंध खय होय ॥

25. बाँध्या सो ही भोगवे, कर्म शुभाशुभ भाव।
फल निर्जरा होत है, यह समाधि चित्त चाव ॥

26. बाँध्या बिन भुगते नहीं, बिन भुगत्यां न छुड़ाय।
आप ही करता भोगता, आप ही दूर कराय ॥

27. पथ कुपथ घट बध करी, रोग हानि वृद्धि थाय।
यूं पुण्य पाप किरिया करी, सुख दुख जग में पाय ॥

28. सुख दियां सुख होत है, दुख दियां दुख होय।
आप हणे नहिं अवर कूं, तो आपा हणे न कोय ॥

हे मन, यह बहुमूल्य अवसर गुजर रहा है, काश! कुछ अपने अनुकूल भी हो जाए तो? पुण्य करोगे तो पुण्य की वृद्धि होगी जैसे एक जलते दीपक से दूसरे बुझे दीपक को भी रोशनी मिल जाती है। हम कल्पवृक्ष चिन्तामणि की माँग तो करते है, पर हे मन! ये तो सांसारिक सुविधा ही दे सकते हैं। असली सुख तो धर्मध्यान से मिलेगा।

अरे मन! आर्त्त, रौद्र इन दो ध्यानों को छोड़कर धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान की ओर अग्रसर हो। जो समय बीत गया उसकी क्यों चिन्ता करते हो, जो आया ही नहीं उसकी क्या इच्छा रखते हो। वर्तमान काल में जीने का अभ्यासी ही ज्ञानी होता है। तुम संसार में बेशक रहो पर

इसमें आसक्त मत होना। सुख दुख सब प्रकार के वातावरण मिलेगें पर तुझे तो दर्पण की भांति निर्लेप और निर्भार रहना है। दर्पण में पहाड़ का प्रतिबिम्ब तो आता है पर बोझ नहीं आता तथा सरोवर की छाया भी पड़ती है पर गीलापन नहीं आता। ममता से कर्म बंध होता है तथा समता से कर्म क्षय। सीधा सा सिद्धान्त है– जो मुझे सुख दुख मिल रहा है वह मेरे अपने ही कर्मों का फल है, यदि समता से झेल लूंगा तो निर्जरा होगी। आत्मा ही कर्मों का कर्ता और भोक्ता है। हे मन! जैसे पथ्य आहार से रोग घट जाता है, कुपथ्य आहार से रोग बढ़ जाता है ऐसे ही पुण्य से सुख मिलता है, पाप से दुख मिलता है। यदि हम किसी का वध करते हैं तो अपना वध करते हैं। यदि किसी की रक्षा करते हैं तो अपनी रक्षा करते हैं।

29. ज्ञान गरीबी गुरु वचन, नरम वचन निर्दोष।
इनको कभी न छोड़िये, श्रद्धाशील सन्तोष ॥

30. सत मत छोड़ो हे नरा, लक्ष्मी चौगुनी होय।
सुख दुख रेखा कर्म की, टाली टले न कोय ॥

31. गोधन गजधन रत्नधन, कञ्चन खान सुखान।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूल समान ॥

32. शील रतन मोटा रतन, सब रतनां की खान।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आन ॥

33. शीले सर्प न आभड़े, शीले शीतल आग।
शीले अरि करि केसरी, भय जावे सब भाग ॥

34. शील रतन के पारखी, मीठा बोले वैन।
सब जग से ऊंचा रहे, जो नीचा राखे नैन ॥

35. तन कर मन कर वचन कर, देत न काहु दुख।
कर्म रोग पातक झड़ें, देखत वां का मुख ॥

36. पान खरन्तो इम कहे, सुन तरुवर वनराय।
अब के विछुड़े कब मिलें, दूर पड़ेंगे जाय ॥

37. तब तरूवर उत्तर दियो, सुनो पत्र एक बात।
इस घर या ही रीत है, इक आवत इक जात ॥

38. बरस दिनां की गांठ को, उत्सव गाय बजाय।
मूरख नर समझे नहीं, बरस गांठ को जाय ॥

आत्म कल्याण के मुख्य साधन हैं– ज्ञान, विनय आज्ञा-पालन, निर्दोष भाषा, श्रद्धा, शील, सन्तोष– इनको अपने हृदय में बसाए रखना है। हे मानव! ये विश्वास करके चल कि सत्य को नहीं छोड़ना फिर तो धन भी चार गुणा हो जाएगा। ये सुख दुख तो कर्मों के कारण मिलते है, इनके चक्कर में सत्य भी क्यों छोड़ता है?

शील और सन्तोष ये दो जिनके पास हैं वे सबसे ज्यादा सुखी हैं। शील के प्रभाव से तो सर्प, अग्नि, शत्रु, हाथी तथा सिंह आदि का भय भी दूर हो जाता है। शील सम्पन्न नर नारी की भाषा मधुर होती है तथा नजरें नीची होती हैं। जिस मानव ने मन वचन काया से किसी को भी दुख नहीं दिया, उसका मुख देखने वालो के पाप भी झड़ जाते हैं।

आगे कवि लिखता है कि एक वृक्ष से पत्ता झरता है तो वृक्ष यही कहता है कि ये तो शाश्वत परम्परा है कि एक आता है दूसरा चला जाता है। ये उम्र बीत रही है हमें किस बात की खुशी है जो हम वर्षगांठ मनाते हैं।

सोरठा-पवन तणों परतीत, किण कारण ते दृढ करी।
इनकी याही रीत, आवे के आवे नहीं॥

दोहाः–

1. करज विराना काढ के, खर्च किया बहु दाम।
जब मुद्दत पूरी हुवे, देना पड़सी दाम ॥

2. बिन दियां छूटे नहीं, यह निश्यच कर मान।
हंस-2 के क्यूं खरचिये, दाम बिराना जान ॥

3. जीव हिंसा करता थका, लागे मिष्ट अज्ञान।
ज्ञानी इम जाने सही, विष मिलियो पकवान ॥

4. काम भोग प्यारा लगे, फल किंपाक समान।
मीठी खाज खुजावतां, पीछे दुख की खान ॥

5. जप तप संजम दोहलो, औषध कड़वी जाण।
सुख कारण पीछे घणो, निश्चय पद निर्वाण ॥

6. डाभ-अणी जल बिन्दुवो, सुख विषयन को चाव।
भव सागर दुख जल भरयो, यह संसार स्वभाव ॥

7. चढ़ उत्तंग जहाँ से पतन, शिखर नहीं वो कूप।
जिस सुख भीतर दुख बसे, सो सुख भी दुख रूप ॥

8. जब लग जिसके पुण्य का, पहुंचे नही करार।
तब लग उसको माफ हैं, अवगुण करे हजार ॥

9 पुण्य क्षीण जब होत है, उदय होत है पाप।
दाझे बन की लाकड़ी, प्रजले आपो आप ॥

10. पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग।
दाबी दूबी ना रहे, रुई लपेटी आग ॥

11. बहु बीती थोड़ी रही, अब तो सुरत संभार।
परभव निश्चय जावनो, वृथा जन्म मत हार ॥

12. चार कोस ग्रामान्तरे, खरची बांधे लार।
परभव निश्चय जावनो, करिये धर्म विचार ॥

साधक अपने आप को बोध देते हुए कहता है— जैसे कोई व्यक्ति किसी साहुकार से कर्ज ले ले और उन्हें अनाप शनाप खर्च कर दे

तो भी उसे देना तो पड़ेगा ही। ऐसे ही संसार में आकर आत्मा को सावधान रहना चाहिए। अज्ञानी व्यक्ति हिंसा में आनन्द मनाता है पर ज्ञानी समझता है कि ये जहर भरा पकवान है तथा काम भोग तो किंपाक फल की तरह हैं, जो पहले अच्छे लगते हैं, अन्त में दुखदायी होते हैं, जबकि धर्म ध्यान कड़वी दवाई की तरह भले अच्छी ना लगे पर परिणाम सुखद होता है। जैसे घास के पत्ते पर ओस की बूंद होती है, उसी प्रकार ये संसार के सुख हैं। भैतिक दृष्टि से जितना ऊंचा उठोगे—आत्म दृष्टि से उतना ही नीचे गिरते जाओगे। अभी तो तुम्हारे पुण्य का अंश शेष हैं, जब ये खत्म हो जाएगा तब तुम्हें कोई बचाने वाला नहीं है। और पाप को कब तक ढके रखोगे, क्या रुई के नीचे आग दबी रह सकती है? जीवन का अधिक भाग बीत चुका है अतः होश में आ, परलोक की फिक्र कर। चार कोस दूर जाना हो तो भी अपने साथ पाथेय लेकर चलने वाले ऐ मानव! परभव का सफर बड़ा लम्बा है, उसके लिए क्या तैयारी की है?

13. रज विरज ऊंची गई, नरमाई के तान।
पत्थर ठोकर खात है, करड़ाई के तान ॥

14. अवगुण उर धरिये नहीं, जो हो वृक्ष बबूल।
गुण लीजे 'कालू' कहे, नहीं छाया में शूल ॥

15. जैसी जांपे वस्तु है, वैसी दे दिखलाय।
बांका बुरा न मानिये, वो लेन कहाँ से जाय ॥

16. गुरु कारीगर सारीखा, टांची वचन विचार।
पत्थर से प्रतिमा करे, पूजा लहे अपार ॥

17. संतन की सेवा कियां, प्रभु रीझत है आप।
जांका बाल खिलाइये, तांका रीझत बाप ॥

18. भव सागर संसार में, दीपा श्री जिनराज।
उद्यम करी पहुंचे तीर, बैठी धर्म जहाज ॥

19. निज आतम को दमन कर, पर आतम को चीन।
परमातम को भजन कर, सोई मत परवीन ॥

20. समझू शंके पाप से, अण समझूं हरषन्त।
वे लूखा वे चीकणा, इण विध कर्म बधंत ॥

21. समझ सार संसार में, समझु टाले दोष।
समझ-2 कर जीवड़ा, गया अनन्ता मोक्ष ॥

22. उपशम विषय कषाय नो, संवर तीनों योग।
किरिया जतन विवेक से, मिटे कुकरम दुख रोग ॥

23. रोग मिटे समता वधे, समकित व्रत आराध।
निर्वेरी सब जीव को, पावे मुक्ति समाध ॥

धूल इतनी मुलायम और नरम है कि शीघ्र ही आकाश को चूमने लगती है जबकि पत्थर जमीन पर लुढकने लगता है। ये संसार गुण दोषमय है, हमें गुण ग्रहण करने हैं, दोष नहीं। हमें ये भी ध्यान रखना है कि कोई आदमी आपको बुरा कहे तो तुम बुरा मत मानना क्योंकि उस बेचारे के पास जो कुछ था, उसने दे दिया। हाँ, गुरुदेव तुम्हें कठोर कहें तो ये समझ लेना कि उनके वचन तो पत्थर को प्रतिभा बनाने के औजार हैं। तथा सन्तों की सेवा को भगवान् की सेवा मान लेना। ये सन्त भगवान् के बच्चे होते हैं, यदि बच्चे को खिलाओगे तो उसका पिता प्रसन्न होगा।

धर्म के जहाज में भगवान् सबको बैठा रहे हैं, आओ तुम भी बैठो। अपनी आत्मा को वश में करो, अन्य की आत्मा को अपने समान मानो तथा परमात्मा का भजन करो। समझदार और नासमझ में ये अन्तर होता है कि एक पाप करके डरता है, दूसरा खुश होता है। एक के गाढ़े कर्म बंधते हैं एक के रूखे। समझदार आदमी दोषों को टालने का प्रयत्न करता है। सम्यक्त्व से समता बढ़ती है और जीव मुक्ति को पा लेता है।

बृहदालोयणा का प्रथम भाग पूर्ण हुआ।

अब रचनाकार 18 पापों की आलोचना करना चाहते हैं और उसकी भूमिका के रूप में वही 4 दोहे लिखते हैं जो प्रारम्भ में लिखे थे। ये सब दोहे मंगलाचरण के रूप में हैं। आओ, उन दोहों को दोहराएँ–

1. सिद्ध श्री परमात्मा अरिगंजन अरिहन्त।
इष्ट देव वन्दूं सदा भय भञ्जन भगवन्त ॥

2. अनन्त चौबीसी जिन नमूं, सिद्ध अनन्ता क्रोड़।
वर्तमान जिनवर सभी केवली दो कोड़ी नव क्रोड़ ॥

3. गणधरादि सर्व साधु जी समकित व्रत गुणधार,
यथा योग्य वन्दन करुं, जिन आज्ञा अनुसार।

नमो अरिहन्ताणं नमो सिद्धाणं नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं नमो लोए सव्व साहूणं ॥

4. पंच परमेष्ठी देव को भजनपुर पञ्चान।
कर्म अरि भाजें सभी शिव सुख मंगल थान ॥

5. अरिहन्त सिद्ध सिमरुं सदा, आचारज उवज्झाय।
साधु सकल के चरण को, बदूं शीश नमाय ॥

6. शासन नामक सुमरिये, वर्धमान जिनचंद।
अलिय विघन दूर हरे, आपे परमानन्द ॥

7. अंगूष्ठे अमृत बसे, लब्धि तणा भण्डार।
श्री गुरु गौतम सुमरिए, वांछित फल दातार ॥

8. श्री जिन पद युग कमल में, मुझ मन अलिय बसाय।
कब ऊगे वो दिनकरु श्री मुख दर्शन पाय ॥

9. प्रणमी पद पंकज भणी, अरिगंजन अरिहन्त।
कथन करुं अब जीव का किञ्चित् मुझ विरतन्त ॥

इसके बाद गाथा के रूप में एक पद्य श्री विनय चन्द चौबीसी से लिया गया है जिसमें भगवान् मुनि सुव्रत स्वामी की स्तुति है–

हूँ अपराधी अनादि को, जन्म-जन्म गुनाह किया भरपूर के,
लूटिया प्राण छः काय ना, सेविया पाप अठारे करूर के,
श्री मुनिसुव्रत साहिबा ॥

प्रथम पाप– प्राणातिपात– आज दिन तक इस भव में और पहले संख्यात असंख्यात अनन्त भवों में कुगुरु, कुदेव और कुधर्म की सद्दहणा प्ररूपणा फरसना सेवनादिक सम्बन्धी पाप दोष लगा हो, उनका 'मिच्छामि दुक्कड़म्'

मैने अज्ञानपन से, मिथ्यात्वपन से, अव्रत पन से, कषायपन से, अशुभ योग से प्रमाद करके अपछंदा अविनीत पना किया। श्री अरिहन्त भगवन्त, वीतराग देव केवलज्ञानी, गणधर देव, आचार्य जी म. तथा सम्यग्दृष्टि स्वधर्मी श्रावक और श्राविका इन उत्तम पुरुषों की तथा शास्त्र, सूत्रपाठ, अर्थ परमार्थ और धर्म सम्बन्धी समस्त पदार्थों की अभक्ति, अविनय, आशातना आदि की, कराई अनुमोदी, मन-वचन-काया से, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से, सम्यक् प्रकार विनय भक्ति, आराधना, पालना, फरसना, सेवनादिक यथायोग अनुक्रम से नहीं की, नहीं कराई, नहीं अनुमोदी तो मुझे धिक्कार-धिक्कार बारम्बार मिच्छामि दुक्कड़म्। मेरी भूल भूल चूक, अवगुण अपराध सब मुझे माफ करो। मैं मन वचन काया से खमाता हूँ।

दोहे प्रारम्भ करने से पूर्व आपको एक सावधानी देना चाहता हूँ कि लेखक रणजीत सिंह ने दूसरे दोहे में अपना नाम लिखा है जबकि इस समय हम सब अपनी आलोचना करने प्रस्तुत हुए हैं अतः दूसरे दोहे में अपना-2 नाम पुकारेंगे।

1. मैं अपराधी गुरुदेव को, तीन भुवन को चोर।
   ठगूं वीराना माल मैं, हा हा कर्म कठोर ॥

2. कामी कपटी लालची, अपछंदा अविनीत।
   अविवेकी क्रोधी कठिन, महापापी 'रणजीत' ॥

3. जे मे जीव विराधिया, सेव्या पाप अठार।
नाथ तुम्हारी साख से, बारम्बार धिक्कार ॥

मैंने छकायपन से छ काया की विराधना की, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, सन्नी, असन्नी, गर्भज चौदह प्रकार के संमूर्च्छिम आदि त्रस स्थावर जीवों की विराधना मन वचन काया से की, कराई, अनुमोदी, उठते बैठते सोते, हालते-चालते, शस्त्र वस्त्र मकानादिक उपकरण उठाते, धरते, लेते, देते, वर्तते, वर्तावते, अप्पडिलेहणा, दुप्पडिलेहणा सम्बन्धी अप्रमार्जना, दुष्प्रमार्जना सम्बन्धी न्यूनाधिक विपरीत पडिलेहणा सम्बन्धी और आहार विहार आदि अनेक प्रकार के कर्त्तव्यों में संख्यात, असंख्यात और निगोद आश्रयी, अनन्त जीवों के जितने प्राण लूटे उन सब जीवों का मैं पापी अपराधी हूँ। निश्चय करके बदले का देनदार हूँ, सब जीव मेरे प्रति माफ करो, मेरे भूल चूक अवगुण अपराध सब माफ करो।

देवसी, राई, पक्खी, चौमासी और सम्वत्सरी सम्बन्धी बारम्बार मिच्छामि-दुक्कड़म् बारम्बार मैं खमाता हूँ। तुम सब क्षमा करो।

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमन्तु मे,
मित्ती मे सव्व भूएसु वेरं मज्झं न केणई ॥

वह दिन धन्य होगा जिस दिन 6 काया के वैर बदले से निवृत्त होऊंगा। समस्त 84 लाख जीव योनि को अभयदान देऊंगा। वह दिन मेरा परम कल्याण का होगा।

सुख दियां सुख होत है दुख दियां दुख होय,
आप हणे नहीं अवर को, आपको हणे न कोय ॥

अठारह पापों में से पहला पाप प्राणातिपात है। जीवन की विवशताओं के कारण यह जीव अन्य जीवों की जिन्दगी की उपेक्षा करता है, हनन करता है और इस कारण सृष्टिचक्र में एक लय भग्न

हो जाती है, एक वर्तुल सा टूटता है, अन्य प्राणियों के वध से हमारा अपना जीवन भी खतरे में पड़ता है। आज मानवता के सामने अनेकों समस्याएँ मुंह बाए खड़ी हैं उन सबकी बुनियाद में हिंसा ही प्रमुख कारण है। पर्यावरण असुरक्षित है, मौसमों के तेवर बदल रहे हैं, ओजोन परत में सुराख बढ़ रहा है, ग्लेशियर पिंघल रहे हैं। Global Warming का खतरा पूरे विश्व पर मंडरा रहा है। इन सबके पीछे मनुष्य की हिंसा वृत्ति ही कारण रही है।

खेत खड़े खाए हैं हिंसा ने, खून के दरिया बहाए हैं हिंसा ने।
गैर क्या अपनों को नहीं बक्शा, जुल्म इतने ढहाए हैं हिसा ने ॥

विकास की भीषण दौड़ में वनों को काटा, पहाड़ों को तोड़ा, जमीन के जल का अंधाधुंध दोहन किया, पृथ्वी तथा वायु में जहरीले रसायनों को छोड़ा, स्वादलोलुपता में मुर्गे, बकरे, सूअर, गायों का कत्ल किया। किसी एक धर्म, संस्कृति या परम्परा के विस्तार के लिए जिहादी माहौल बनाया। आत्मघाती दस्तों के द्वारा बेगुनाहों को लील लिया। इस प्रकार बढ़ती हिंसा से सकल मानवता सन्त्रस्त हो रही है। पर आज हम सब अपने प्रभु महावीर की साक्षी से ये सौगंध खाते हैं कि हे प्रभो! हम किसी जीव को मारने में हिस्सेदार नहीं बनेगें। हिंसा से दूर रहेगें।

जहाँ तक मृषावाद अर्थात् झूठ बोलने का सवाल है इस पाप में हमारा धार्मिक वर्ग भी आकण्ठ डूबा हुआ है। हम धर्मध्यान के कठोर से कठोर नियमों की पालना करने की भावना रखते हैं पर असत्य भाषण से बचने का तो हम शायद ख्याल ही भूल गए हैं। जीवन के प्रत्येक पहलू पर असत्य की मैली छाया पड़ी हुई है और इसीलिए हमारे अधिकांश धर्म कार्यों में भी सत् और तंत निकल गया है। व्यापार में झूठ है, परिवार में झूठ है, रिश्तेदारी में झूठ है। राजनीति में तो झूठ है ही, अब तो धर्मनीति में भी खुलकर झूठ चलने लगा है। इसी कारण परस्पर विश्वास नहीं होता। सब एक दूसरे को शक की निगाह से

देखते हैं कारण है— असत्य। क्या आज के मंगलमय दिवस पर हम उस सत्य देवता भगवान् महावीर को साक्षी मानकर कह सकेगें कि हे प्रभो! आज के बाद तेरा यह पुजारी तुझे झूठ के फूल नहीं चढाएगा।

चोरी का तो झूठ के साथ चोली दामन का सा सम्बन्ध है। पहला बढेगा तो दूसरा भी बढ़ेगा, दूसरा बढ़ेगा तो पहला भी। दोनों साथ-2 बढ़ते है, साथ-2 घटते हैं हम उन चोरियों के बारे में भी विचार कर लें जिन्हें हम सामान्यतः चोरी नहीं मानते जैसे टैक्स चोरी, कम तोल-माप आदि।

मैथुन नामक चौथा पाप हमारे मोह-भाव का प्रतीक है। संसार के प्रति मानव का सर्वाधिक आकर्षण मैथुन के माध्यम से ही होता है। मैथुन संज्ञा मानव में सर्वाधिक होती है इससे छूटना बड़ा कठिन है पर जम्बू जी स्थूल भद्र जैसे संयमी साधकों के जीवन वृत्त इस पाप की तीव्रता को कम करने में सहायता कर सकते हैं।

पांचवां पाप परिग्रह गृहस्थ के लिए अनिवार्य पाप हो गया है। परिग्रह के बिना गृहस्थ का गुजारा नहीं है। वह पदार्थों व धन की आसक्ति न करे तो उसके लिए अपना, परिवार का तथा रिश्तेदारी का निर्वाह करना असम्भव हो जाए। अतः इस पाप का पूर्ण त्याग करने के बजाय उसके प्रति अनासक्ति ही बना लें तो यह परिग्रह कुछ कम हो सकता है।

इन 5 पापों के पीछे असली ताकत है— क्रोध, मान, माया और लोभ की। ये चारों कषाय मानसिक पाप हैं तथा कर्म बन्ध में इनका अहम रोल होता है। इन 4 कषायों के पीछे भी राग द्वेष का प्रबल हाथ होता है। इन्हें आगमकारों ने कर्म का बीज कहा है। मानव मन को दो भागों में बाँटकर फिर इसके टुकड़े-2 करना राग द्वेष की कहानी है, मेहरबानी है।

कलह, अभ्याख्यान, पैशून्य तथा पर-परिवाद ये 4 पाप सामाजिक पारिवारिक अपराध हैं। वाणी का दुरुपयोग, दूसरों के प्रति ईर्ष्या, निन्दा चुगली का रस— ये सारे कारण हैं इन पापों के। रति अरति फिर राग द्वेष की ही सतही व्याख्याएँ हैं। मन में भौतिक वस्तुओं के प्रति रुचि और धार्मिक क्रियाओ में अरुचि ही रति अरति है।

अन्तिम पाप है– मिथ्या दर्शन शल्य। आस्तिकता का अभाव ही मिथ्यादर्शन है। बिना आस्तिकता के सारे पापों का रास्ता खुल जाता है। इसके बन्द होने पर और पापों का द्वार बन्द होने की सम्भावना बन जाती है। अतः आज के दिन हम इन 18 पापों के त्याग के प्रति सतर्क बनेंगे तो आज का दिन सार्थक होगा।

आओ मूल पाठ की ओर बढ़ें–

दूसरा पाप– मृषावाद– झूठ बोलना क्रोध के वश, मान के वश, माया के वश, लोभ के वश, हास्य करके, भय के वश मृषा (झूठा) वचन बोला हो, निन्दा विकथा की हो, कर्कश, कठोर मर्म वचन बोला हो इत्यादि अनेक प्रकार से मृषा बोला, बोलवाया और अनुमोदा तो उसका मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कड़म्।

दोहा– थापन मोसा मैं किया, करी विश्वासघात।
परनारी धन चोरिया, प्रकट कह्यो नहीं जात ॥

मुझे धिक्कार-2 बारम्बार मिच्छामि दुक्कड़म्। वह दिन धन्य होवेगा जिस दिन सर्व प्रकार से मृषावाद का त्याग करुंगा। वह दिन मेरा परम कल्याण का होगा।

तीसरा पाप– अदत्तादान– बिना दी हुई वस्तु चोरी करके लेना। यह बड़ी चोरी लौकिक विरुद्ध, अल्प चोरी मकान सम्बन्धी, अनेक प्रकार के कर्त्तव्यों में उपयोग सहित या बिना उपयोग से अदत्तादान मन वचन काया से चोरी की, कराई और अनुमोदी तथा धर्म सम्बन्धी ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप श्री भगवन्त गुरुदेव की बिना आज्ञा किया उसका मुझे धिक्कार-2 बारम्बार मिच्छामि दुक्कड़म्। वह दिन मेरा धन्य होगा जिस दिन सर्व प्रकार से अदत्तादान का त्याग करुंगा, वह दिन मेरा परम कल्याण का होगा।

चौथा पाप– मैथुन– मैथुन सेवन करने के लिए मन वचन और काया का योग प्रवर्ताया, नव बाड़ सहित ब्रह्मचर्य नहीं पाला, नवबाड़ में

अशुद्धपन से प्रवृत्ति हुई, मैंने मैथुन सेवन किया, दूसरों से सेवन कराया और सेवन करने वाले को अच्छा समझा, उसका मन वचन काया से मुझे धिक्कार-2 बारम्बार मिच्छामि दुक्कड़म्। वह दिन मेरा धन्य होगा जिस दिन मैं नवबाड़ सहित ब्रह्मचर्य-शीलरतन आराधूंगा अर्थात् सर्व प्रकार से काम विकार से निवर्तूगां, वह दिन मेरा परम कल्याण का होगा।

पाचवां पाप– परिग्रह– सचित्त परिग्रह तो दास दासी, द्विपद चतुष्पद (पशु) आदि अनेक प्रकार के और अचित्त परिग्रह सोना, चांदी, वस्त्र, आभूषण आदि अनेक प्रकार के हैं उनकी ममता मूर्च्छा की, क्षेत्र घर आदि नव प्रकार के बाह्य परिग्रह और चौदह प्रकार के आभ्यन्तर परिग्रह को रखा, रखवाया और अनुमोदा तथा रात्रि भोजन, अभक्ष्य आहार सम्बन्धी पाप दोष सेव्या हो तो मुझे धिक्कार-2 बारम्बार मिच्छामि दुक्कड़म्। वह दिन मेरा धन्य होवेगा जिस दिन सब प्रकार के परिग्रह का त्याग कर संसार के प्रपञ्च से निवर्तूंगा, वह दिन मेरा परम कल्याण का होगा।

छठा– क्रोध– क्रोध करके अपनी आत्मा को तथा पर-आत्मा को दुखी किया।

सातवां– मान– अहंकार भाव लाया, तीन गौरव और आठ मद आदि किया।

आठवां– माया– धर्म सम्बन्धी तथा संसार सम्बन्धी अनेक कर्त्तव्यों में कपट किया।

नवमां– लोभ– मूर्च्छा भाव लाया, आज्ञा तृष्णा वांछा आदि की।

दसवां– राग– मन पसन्द वस्तु से स्नेह किया।

ग्यारहवां– द्वेष– नापसन्द वस्तु देखकर उस पर द्वेष किया।

बारहवां– कलह– अप्रशस्त (खराब) वचन बोलकर क्लेश उत्पन्न किया।

तेरहवां– अभ्याख्यान– झूठा कलंक दिया।

चौहदवां– पैशून्य– दूसरे की चुगली की।

पन्द्रहवां– परपरिवाद– दूसरे का अवगुणवाद (अवर्णवाद) बोला– निन्दा की।

सोलहवां– रति अरति– 5 इन्द्रियों के 23 विषय और 240 विकार हैं इसमें मन पसन्द पर राग किया और नापसन्द पर द्वेष किया तथा संयम, तप आदि पर अरति (अरुचि) की तथा आरंभादिक, असंयम, प्रमाद में रति (रूचि) भाव किया।

सत्रहवां– माया मृषावाद– कपट सहित झूठ बोला।

अठाहरवां– मिथ्यादर्शन शल्य– श्री जिनेश्वर देव के मार्ग में शंका, कुशंका आदि विपरीत श्रद्धा प्ररुपणा की।

इस प्रकार 18 पाप का द्रव्य से क्षेत्र से, काल से, भाव से जानते अजानते मन वचन और काया से सेवन किया, कराया और अनुमोदा, **"दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा"** इस भव में, पर भव में, पहले संख्यात असंख्यात, अनन्त भवों में भवभ्रमण करते आज दिन तक **(यहाँ वर्तमान में जो संवत, महीना तथा तिथि हो वह कहें)** राग, द्वेष, विषय, कषाय, आलस, प्रमाद आदि पौद्गलिक प्रपञ्च परगुण पर्याय की विकल्प भूल की, ज्ञान की विराधना की, दर्शन की विराधना की, चारित्राचारित्र की, तप की विराधना की। शुद्ध श्रद्धा शील सन्तोष क्षमा आदि जिन स्वरूप की विराधना की। उपशम, विवेक, संवर, सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण, ध्यान, मौन आदि व्रत पच्चक्खाण, दान शील तप आदि की विराधना की।

परम कल्याणकारी इन बोलों की आराधना, पालनादि मन वचन और काया से नहीं की, नहीं कराई, नहीं अनुमोदी। छ आवश्यक सम्यक् प्रकार विधि उपयोग सहित आराधा नहीं, पाला नहीं, फरसा नहीं, विधि उपयोग रहित निरादरपने से किया, आदर सत्कार भाव भक्ति सहित नहीं किया। ज्ञान के चौदह, समकित के पांच, बारह व्रतों के 60, कर्मादान के 15, संलेखना के 5 इन 99 अतिचारों में तथा 124 अतिचारों में तथा साधु जी के 125 अतिचारों में तथा 52 अनाचारों का श्रद्धानादि

में विराधना आदि जो कोई अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार आदि सेवन किया, सेवन कराया, अनुमोदना की, जानते अजानते मन वचन काया से उनका मुझे धिक्कार-2 बारम्बार मिच्छामि दुक्कड़ं।

मैंने जीव को अजीव, अजीव को जीव श्रद्धा प्ररुप्या, धर्म को अधर्म, अधर्म को धर्म श्रद्धया प्ररुप्या, तथा साधु को असाधु व असाधु को साधु श्रद्धया प्ररुप्या तथा उत्तम पुरुष साधु मुनिराज महासतियां जी की सेवा भक्ति मान्यता आदि यथाविधि नहीं की, नहीं कराई, नहीं अनुमोदी तथा असाधुओं की सेवा भक्ति मान्यता आदि का पक्ष किया। मुक्ति मार्ग को संसार का मार्ग यावत् 25 मिथ्यात्व में किसी मिथ्यात्व का सेवन किया, सेवन कराया, अनुमोदा, मन वचन काया से 25 कषाय सम्बन्धी, ध्यान के 19 दोष, वन्दना के 32 दोष, सामायिक के 32 दोष, पौषध के 18 दोष सम्बन्धी मन वचन और काया से कोई पाप दोष लगा हो, लगाया हो, अनुमोदा हो उसका मुझे धिक्कार-धिक्कार बारम्बार मिच्छामि दुक्कड़म्।

महामोहनीय कर्मबन्ध के 30 स्थानों का मन वचन और काया से सेवन किया, सेवन कराया, अनुमोदा, शील की नवबाड़ तथा आठ प्रवचन माता की विराधनादि, श्रावक के 21 गुण और 12 व्रत की विराधनादि मन वचन और काया से की, कराई और अनुमोदी तथा 3 शुभ लेश्या के लक्षणों की और अन्य बोलों की विराधना की, चर्चा वार्ता वगैरह में श्री जिनेश्वर देव का मार्ग लोपा, गोपा, नहीं माना, अछते की स्थापना की, छते की स्थापना नहीं की, और अछते का निषेध नहीं किया, छते की स्थापना और अछते का निषेध करने का नियम नहीं किया, कलुषता की तथा छः प्रकार के ज्ञानावरणीय बन्ध के बोल ऐसे ही छः प्रकार के दर्शनावरणीय बन्ध के बोल, आठ कर्म की अशुभ प्रकृति का बन्ध, 57 कारणों से पाप की 82 प्रकृति बाँधी, बंधाई, अनुमोदी, मन वचन काया करके उनका मुझे धिक्कार-2 बारम्बार मिच्छामि दुक्कड़म्।

एक-एक बोल से लगाकर कोड़ा कोड़ी यावत् संख्याता, असंख्याता, अनन्त बोलों में से जानने योग्य बोलों को सम्यक् प्रकार से जाना नहीं, श्रद्धया नहीं, प्ररुप्या नहीं तथा विपरीतपन से श्रद्धा आदि की, कराई, अनुमोदी, मन वचन और काया से उनका मुझे धिक्कार-2 बारम्बार मिच्छामि दुक्कड़म्।

एक-एक बोल से यावत् अनन्ता-2 बोलों में छोड़ने योग्य बोल को छोड़ा नहीं, उनको मन वचन काया से सेवन किया, सेवन कराया और अनुमोदा उनका मुझे धिक्कार-2 बारम्बार मिच्छामि दुक्कड़म्।

एक-एक बोल से लगाकर जाव अनन्ता अनन्त बोलों में आदरने योग्य बोलों को आदरा नहीं, आराधा नहीं, पाला नहीं, फरसा नहीं, विराधना खंडना आदि की, कराई अनुमोदी, मन वचन काया से उसका मुझे धिक्कार-2 बारम्बार मिच्छामि दुक्कड़म्।

श्री जिन भगवन्त जी म. आपकी आज्ञा में जो जो प्रमाद किया और सम्यग् प्रकार उद्यम नहीं किया, नहीं कराया, नहीं अनुमोदा, मन वचन काया करके तथा अनाज्ञा में उद्यम किया, कराया, अनुमोदा, एक अक्षर के अनन्तवें भाग मात्र दूसरा कोई स्वप्नमात्र में भी श्री भगवन्त महाराज आपकी आज्ञा से न्यूनाधिक विपरीत प्रवृत्ति की हो तो उसका मुझे धिक्कार-2 बारम्बार मिच्छामि दुक्कड़म्।

अगले दोहों में रचनाकार सम्यग् दर्शन, ज्ञान तथा चारित्र सम्बन्धी दुर्बलताओं का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि मैंने पक्षपात करते हुए अशुद्ध प्ररुपणा की, अशुद्ध श्रद्धा की हो तथा जिनेन्द्र भगवान् के वचनों को जानने का प्रयत्न नहीं किया हो तो उसके लिए खेद प्रकट करता हूँ। हे प्रभो! मुझे लगता है कि आपके उपदेश सुनकर भी मेरे हृदय में वैराग्य नहीं पैदा हुआ तो मैं पत्थर की तरह हो गया हूँ, जिस पर कितना ही पानी बरसे वह गीला नहीं होता। मेरा आचरण तो इतना बुरा है कि मैं बहुमूल्य रत्नों की चोरी करके भी जताता यही हूँ कि मैंने तो सूई ही पाई है। आश्चर्य तो इस बात का है कि जैन धर्म

पाकर भी मेरे मन में विषय कषाय कम नहीं हुए। मैं महापापी हूँ। हे प्रभो! मैं कंचन और कामिनी के चक्कर में फंसा हुआ हूँ।

दोहेः–

1. श्रद्धा अशुद्ध प्ररुपणा करी फरसना सोय।
   अनजाने पक्षपात में, मिच्छा दुक्कड़म् मोय ॥

2. सूत्र अर्थ जानूं नहीं, अल्प बुद्धि अनजान।
   जिन भाषित सब शास्त्र का अर्थ पाठ परमान ॥

3. देव गुरु धर्म सूत्र को, नवतत्त्वादिक जोय।
   अधिका ओछा जे कह्या, मिच्छा दुक्कड़म् मोय ॥

4. हूँ मगसेल्यो ही रह्यो, नहीं ज्ञान रस भीज।
   गुरु सेवा न करी सकूं, किम मुझ कारज सीझ ॥

5. जाने देखे जे सुने, देवे सेवे मोय।
   अपराधी उन सबन का, बदला देसूं सोय ॥

6. गबन करुं बुगचा रतन, द्रव्य भाव सब कोय।
   लोकन में प्रगट करुं, सूई पाई मोय ॥

7. जैन धर्म शुद्ध पाय के, वरतूं विषय कषाय।
   यह अचम्भा हो रह्या, जल में लागी लाय ॥

8. जितनी वस्तु जगत में, नीच नीच से नीच।
   सबसे मैं पापी बुरो, फंसू मोह के बीच ॥

9. एक कनक अरु कामिनी, दो मोटी तलवार।
   उठ्यो थो जिन भजन कूं बिच में लियो मार ॥

10. सवैया कवित्त

छांड के संसार छार फिर छार बीच रहे,
माया को निवारी फिर माया दिल धारी है।

पिछला तो कीच धोया फिर कीच वीच रहे,
दोनों पथ खोए बात बनी सो बिगारी है।

साधु कहलाय नारी निरखै लोभाय अरु,
कञ्चन की आस करै प्रभुता विसारी है।

लीनी है फकीरी फिर अमीरी की आस करूं,
काहे को धिक्कार सिर पगड़ी उतारी है ॥

हे प्रभो, मेरी आत्मा ने अनन्त बार साधु वृत्ति ग्रहण की पर उसमें अन्तरात्मा से लीन नहीं हो सका। इसी कारण मेरी दुर्गति हुई।

11. त्याग न कर संग्रह करूं, विषय वमन जिन आहार।
    तुलसी ए मुझ पतित को, बारम्बार धिक्कार ॥

12. राग द्वेष दो बीज हैं, कर्मबन्ध फल देत।
    इनकी फांसी में बंध्यो, छूटूं नही अचेत ॥

13. रतनबंध्यो गठड़ी विषे, भानु छिप्यो घन माँहि।
    सिंह पिंजरा में दियो, जोर चले कछु नाहिं ॥

14. बुरा बुरा सबको कहूँ, बुरा न दीसे कोय।
    जो घट शोधूं आपणो, तो मोसूं बुरा न कोय ॥

15. कामी कपटी लालची, कठिन लोह को दाम।
    तुम पारस परसंग थी, सुवर्ण थासूं स्वाम ॥

प्रभो! पुनः-2 एक ही विचार मन में उभर रहा है कि मेरा जीवन त्याग प्रधान न होकर भोग प्रधान रहा है और इसी कारण राग द्वेष की फांसी में फंसा हुआ हूँ। मेरे पास शक्ति तो अनन्त है पर क्या करुं

बन्धन ग्रस्त होने से बिल्कुल निर्वीर्य एवं अशक्त हुआ पड़ा हूँ। हे प्रभो! संभव है आपके सम्पर्क से मेरा लोहे सा जीवन सोने का बन जाए।

16. श्लोक

मैं जपहीन हूँ तपहीन हूँ प्रभु हीन संवर समगतं।
हे दयाल कृपाल करुणानिधि, आयो तुम शरणागतं,
प्रभु आयो तुम शरणागतम् ॥

17. नहीं विद्या नहीं वचन बल, नहीं धीरज गुण ज्ञान।
तुलसी दास गरीब की, पत राखो भगवान् ॥

18. विषय कषाय अनादि को, भरियो रोग अगाध।
वैद्यराज गुरु शरण से, पाऊं चित्त समाध ॥

19. कहवा में आवे नहीं, अवगुण भरिया अनन्त।
लिखवा में क्यों कर लिखूं, जाणो श्री भगवन्त ॥

20. आठ कर्म प्रबल करी, भमियो जीव अनादि।
आठ कर्म छेदन करी, पावे मुक्ति समाधि ॥

21. पथ कुपथ कारण करी, रोग हानि वृद्धि थाय।
इम पुण्य पाप किरिया करी, सुख दुख जग में पाय ॥

22. बान्ध्या बिन भुगते नहीं, बिन भुगत्यां न छुटाय।
आप ही करता भोगता, आप ही दूर कराय ॥

हे परम पावन वीतराग प्रभो, मैं तो हर तरह से निकृष्ट हूँ लेकिन आपका शरणा ही मेरा बेड़ा पार करेगा। अपने दोष, दुर्गुण न मैं कह सकता हूँ, न लिख सकता हूँ पर आपको तो सब कुछ पता ही है, अब तो मेरे आठों कर्म काट कर मुझे मुक्ति दिला दो। ये ठीक है, निश्चय में तो मैं ही कर्त्ता भोक्ता हूँ पर प्रभु आपका सहारा मेरे लिए अभी बहुत जरूरी है।

23. हूँ अविवेकी मोहवश, आँख मींच अंधियार।
मकड़ी जाल बिछाय के, फसूं आप धिक्कार ॥

24. सर्व भक्षी जिम अग्नि हूँ, तपियो विषय कषाय।
स्वच्छन्दी अविनीत मैं, धर्मी ठग दुख दाय ॥

25. कहा भयो घर छांड के, तजियो न माया संग।
नाग तजी जिम कांचली, विष न तजियो अंग ॥

26. आलस विषय कषाय वश, आरम्भ परिग्रह काज।
योनि चौरासी लख भम्यो, अब तारो महाराज ॥

27. आतम निंदा शुद्ध भणी, गुणवन्त वन्दन भाव।
राग द्वेष उपशम करी, सबसे खमत खिमाव ॥

28. पुत्र कुपुत्र जो मैं हुआ, अवगुण भर्यो अनन्त।
अपनो विरुद विचार के, माफ करो भगवन्त ॥

29. शासनपति वर्धमान जी, तुम लग मेरी दौड़।
जैसे समुद्र जहाज विन, सूझत और न ठौर ॥

30. भव भ्रमण संसार दुख, तांका वार न पार।
निर्लोभी सतगुरु विना, कौन उतारे पार ॥

31. भव सागर संसार में, दीपा श्री जिनराज।
उद्यम करी पहुंच तीरे, बैठी धर्म जहाज ॥

32. पतित उद्धारन नाथ जी, अपनो विरुद विचार।
भूल चूक सब माहरी, खमिये बारम्बार ॥

33. माफ करो सब माहरा, आज तलक रा दोष।
दीन दयाल देवो मुझे, श्रद्धाशील सन्तोष ॥

हे प्रभो, यों तो मैं भी धर्म पाप की व्याख्याएँ और स्वरूप जानता हूँ पर आँख बन्द किए हुए हूँ, इसलिए चारों ओर अंधेरा है। मैं तो मकड़ी की तरह अपने ही जाल में उलझा हुआ हूँ किसी और का कोई

दोष नहीं है। मैं क्या हूँ एक जलती बुझती आग हूँ। मैं क्या हूँ। एक जहरीला नाग हूँ जिसने काञ्चली तो बार-2 छोड़ी है पर जहर नहीं छोड़ा।

हे प्रभो! मैं अपनी ही वजह से 84 लाख योनि में भटकता रहा हूँ, पर अब आपसे तारने की प्रार्थना कर रहा हूँ। अपने पापों की निन्दा करना अच्छा मानकर मैं ऐसा कह रहा हूँ– मैं तो आपका नालायक बेटा हूँ, कुपुत्र हूँ पर आप तो सच्चे पिता हो, मुझे माफ कर दो। आखिर मैं जाऊं भी तो कहाँ जाऊं, मेरी पहुंच तो आप तक ही है, समुद्री जहाज का पंछी कहीं भी उड़ारी भर ले पर अन्ततः तो उसे उसी जहाज पर आना पड़ेगा। इस संसार सागर का तो ओर-छोर कहीं भी नजर नहीं आ रहा। हे गुरुवर! मैं तो आपके जलयान में बैठ गया हूँ अतः विश्वास है कि पार पहुंच ही जाऊंगा, बस मेरे पापों की तरफ मत देखना। अपने गौरव का ही ध्यान रखना। मुझे माफ करके कुछ स्थायी पूंजी मुझे दे देना।

श्रद्धा की निर्मलता, प्रभु शरणता, संवर निर्जरा तथा तीनों मनोरथों से सम्बन्धित दोहों को फिर से दोहराते हुए लेखक लिखता है–

34. देव अरिहन्त निर्ग्रन्थ गुरु, संवर निर्जरा धर्म।
केवली भासित शासतर, यही जैन मत मर्म ॥

35. इस अपार संसार में, अवर शरण नहीं कोय।
या ते तुम पद कमल ही, भक्त सहायी होय ॥

36. छूटूं पिछला पाप से, नवा न बाँधू कोय।
श्री गुरुदेव प्रसाद से सफल मनोरथ होय ॥

37. आरंभ परिग्रह तजी करी, समकित व्रत आराध।
अन्त समय आलोय के, अनशन चित्त समाध ॥

38. तीन मनोरथ ऐ कह्या, जे ध्यावे नित मन।
शक्ति सार वरते सही, पावे शिव सुख धन्न ॥

श्री पञ्च परमेष्ठी भगवन्त गुरुदेव जी महाराज आपकी आज्ञा है। सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र तप संयम संवर निर्जरा और मुक्ति मार्ग यथा शक्ति से शुद्ध उपयोग सहित आराधने, पालने, फरसने, सेवने की आज्ञा है। बारम्बार शुभ योग सम्बन्धी आराधने की सर्व प्रकार आज्ञा है।

अन्त में श्रावक रणजीत सिंह जी कहते हैं कि मनोयोग पूर्वक शुद्ध भाव से इस वृहदालोयणा को पढें। यह आलोचना हलुकर्मी जीवों के लिए मन पसन्द चीज है पर कायर तथा भारी कर्मा के लिए ये अति कठिन और दुर्लभ है, तथा उच्चारण दोष के लिए भी तस्स मिच्छामि दुक्कड़म् लेता हूँ।

1. निश्चय चित्त शुद्ध मुख पढत, तीन योग थिर थाय।
   दुर्लभ दीसे कायरा, हलुकर्मी चित भाय ॥

2. अक्षर पद हीणो अधिक, भूल चूक जो होय।
   अरिहंत सिद्ध आतम साख से, मिच्छा दुक्कड़ं मोय ॥

इस प्रकार यह 'आलोयणा' पाठ रूप से सम्पन्न हुई।

आवश्यकता इस बात की है कि यह हमारे मनोभावों से हो। वैसे हम कितने ही पापों के दलदल में क्यों न धंस गए हों, हमारा मन अपनी दुर्दशा पर कभी-2 तो बुरी तरह विलाप करता ही है। क्या हम इस संसार में इसी वास्ते आए हैं कि पापों की गठड़ी और सिर पर बाँध लें। जिस दिन हम इस संसार से विदा होंगे तब हमारे साथ क्या जाएगा? केवल अपने अच्छे और बुरे कर्म। बड़े-2 बादशाहों, सेठ साहुकारों की यही कहानी रही है कि वे जब यहाँ से विदा हुए तब उनके साथ निराशा, हताशा के सिवाय क्या गया?

इकट्ठे कर जहाँ के जर, सभी मुल्कों के माली थे।
सिकन्दर जब गए दुनिया से, दोनों हाथ खाली थे ॥

राजा भोज ने अपने मरणोपरान्त एक व्यवस्था बनाने का आदेश दिया था कि अर्थी के बाहर मेरे दोनों हाथ निकलवा देना। एक हथेली

पर काला रंग कर देना, दूसरी पर सफेद, ताकि लोगों को भी ध्यान रहे कि ये आदमी दुनिया की सम्पति अपने साथ लेकर नहीं गया अपितु अच्छाई और बुराई ही इसके साथ गई है। विचार करना होगा कि जब हमारी असली पूंजी पुण्य और पाप ही है और कुछ नहीं फिर हम अनावश्यक ऐसे दुष्कर्म क्यों करें जिन को कहते-2 जीभ फटने लगे और सोचते-2 दिल रोने लगे।

सौभाग्य से हमें उत्तम परिवार मिला, ऊंचे गुरु मिले, अच्छे संस्कार मिले। अब हमें इन्हें और पुख्ता बनाना है। आज के सम्वत्सरी पर्व पर हम सोचें कि हमारा आने वाला कल आज से बेहतर हो, तभी इस पर्व का मनाना सार्थक होगा।

हमने आठ दिनों तक अन्तगड़ सूत्र सुना, कल्प सूत्र सुना, आलोयणा सुनी, प्रतिक्रमण किया। अच्छा धर्ममय वातावरण रहा, अब कोशिश ये भी हो कि शेष वर्ष भी कुछ धर्मध्यान में व्यतीत हो। सामायिक करें, स्थानक में आकर स्वाध्याय करें। पूज्य साधु साध्वियों के दर्शन करें, क्षेत्र में पधारने की विनति करें।

सम्वत्सरी पर्व के दिन सायं प्रतिक्रमण का और भी अधिक महत्व है। अतः शाम को अधिकाधिक संख्या में पधार कर प्रतिक्रमण अवश्य करें।

हम भी आपके क्षेत्र में आए, आप सबने हमें भरपूर सहयोग दिया। हमारा ज्ञान अल्प है, भाषण कला भी नहीं है केवल गुरुदेवों की कृपा और आपके सहयोग से शासन की कुछ सेवा कर पाए हैं। अतः गुरुदेवों के प्रति कृतज्ञता अर्पित करते हुए आपका आभार मानते हैं। हमारे किसी व्यवहार से आपको खेद पहुंचा हो तो हृदय से क्षमा प्रार्थी हैं।

सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याण कारणम्।
प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयति शासनम् ॥

– जय जिनेन्द्र
जय गुरुदेव

उपयोगी भजन

तर्जः– दमादम मस्त कलंदर

निन्दा सुनना करना बड़ा ही पाप है, बचते चलें दूर टलें
हृदय की इस माया से, पाप की इस छाया से, वचन से और काया से

1. अपने पाप नजर नहीं आते, औरों के चुनचुन कर लाते।
   जन्म-2 का हमको मिला ये शाप है ॥
2. ज्ञान ध्यान में मन नहीं लगता, निन्दा में है रातों जगता
   ये ही पूजा ये ही बनाया जाप है ॥
3. छोटा साबित करके किसी को, बड़ा समझते हैं खुद ही को
   कितना घिनौना हमने बनाया माप है ॥
4. नहीं सत्य की चिन्ता रहती, सिद्धान्तों की नींव है ढहती
   जीभ ये बकती फिर तो अनाप शनाप है ॥
5. कर्म बन्ध का कुछ तो डर हो, मुंह पत्ती का कुछ तो फिकर हो
   सोचो कितना भीषण मिथ्यालाप है ॥

तर्जः– चांदी की दीवार न तोड़ी...

पापों में है ध्यान लगाया सुख की करता आशा है
विष पीकर जीना चाहे ये कैसा अजब तमाशा है ॥टेक॥

1. लेता है प्रभु नाम पाप के धन से घर को है भरता
   पानी पीता छान-छानकर फूंक-फूककर पग धरता
   इंसानों की रोटी छीने दान कीड़ियों को करता
   मन भर भरकर भोग भोगता धर्म का तोला मासा है ॥

2. पर निन्दा सुनता खुश होकर पर गुण वर्णन नहीं सुना
कांटों में उलझा उपवन का फूल न सुन्दर कोई चुना
अवगुण ढकता अपने गुण को करके बताता कई गुणा
अपनी बदी संभाल के रखे सबका मर्म प्रकाशा है ॥

3. नहीं शील आचार सुरक्षित बना चौधरी है सबका
नहीं किसी से प्यार मोहब्बत यार बना है मतलब का
सुन्दर पुतली के भीतर दुर्गन्ध का नाला है भभका
कर्म करे सातवीं नरक के स्वर्गों की अभिलाषा है ॥

4. जहर हो अन्दर पर वाणी में रंग प्रेम का भरना है
धोखे का है जाल जिन्दगी कहना कुछ कुछ करना है
लिखवाकर भी दे नहीं चन्दा अच्छा डूबकर मरना है
इज्जत की है हवा बनाई जैसे फूल पताशा है ॥

5. धन दौलत के ढेर लगे पर शान्ति नहीं है जीवन में
मन में चिन्ताओं के चक्कर रोग भर रहे हैं तन में
पत्नी पुत्र स्वच्छन्द हुए हैं कोई नहीं अनुशासन में
जितना किया विकास बना वह सब ही गले का पाशा है ॥

तर्जः–चले आओ दिल में बसाके-

करो दूर गुरुवर जी मेरे गुनाह, ये अर्जी है, अर्जी है, अर्जी मेरी
हूँ पापी मगर रखो ठण्डी निगाह, ये अर्जी है, अर्जी है, अर्जी मेरी

1. ये माना गुनाहों की सीमा नहीं,
संभलने का खुद को तजुर्बा नहीं
संभालो तुम्हीं गिरते बालक की बाँह ॥

2. किए पाप जिनको है कहना कठिन,
उन्हीं पापों का बोझ सहना कठिन
सुनो सहमे दिल की भी आहो-कराह ॥

3. मेरे हर यकीं की है धज्जी उड़ी,
तेरी नजरे मेहर पे नजरें टिकी
पतित का करोगे सिर्फ तुम निबाह ॥

4. मेरा आचरण और कथन भिन्न है,
हृदय भिन्न है और यतन भिन्न है
करो सबको हमवार और हमराह ॥

5. बहुत चाहतों का रहा हूँ गुलाम,
अंजाम में पाए रंजो आलाम
उखाड़ डालो जड़ से जमी हुई चाह ॥

भगवान् महावीर ने तप के रूप में जो भी अनुष्ठान किया वह केवल देह-शोषण नहीं था, वह इन्द्रियों के प्राचीन सुखाभ्यास को भंग करना था, वह चरित्र की परिपक्वता के लिए किया गया योग था। वह शरीर ऊर्जा का अल्पतम व्यय करते हुए आत्म ऊर्जा का आविर्भाव था। वह ध्यान की पूर्णता से उत्पन्न शरीर-निरपेक्षता का प्रतिबिम्ब था।